# म
# र
# व
# ण

तथा

## अन्य गीति-रूपक

— मदनगोपाल शर्मा




आस्था प्रकाशन
जयपुर




अप्रेल 1982





प्रकाशक : आस्था प्रकाशन, गोपालपुरा मार्ग, जयपुर—15 (राज०)
वितरक : चम्पालाल रांका एण्ड कम्पनी, किताब महल, चौडा रास्ता, जयपुर—302003 [दूरभाष—75241]
मुद्रक : प्रद्युम्नकुमार शर्मा, श्रीबालचन्द यन्त्रालय, "मानवाश्रम" दुर्गापुरा रोड, जयपुर—302015 फोन 82383

---

Maruvana Tatha Anya Geeti-Roopak [Hindi Poetry Drama]
By : Madan Gopal Sharma Rs 25 50

## उपक्रम

प्रस्तुत कृति में मेरे छह गीति-रूपक संग्रहीत हैं
जो राजस्थान की लोक-विश्रुत प्रणय-कथाओं पर आधारित हैं।
राजस्थानी प्रणय के रूप-रंग-रस-गन्ध का
हिन्दी के माध्यम से आस्वादन भी
इनके सृजन का इष्ट आधेय रहा है।
आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से
ढोला-मारू शीर्षक से प्रसारित गीति-रूपक मरवण
इस विधा की मेरी सर्वप्रथम रचित-प्रसारित
प्रेरक कृति है।
इन गीति-रूपकों के प्रसारण के लिए
मैं आकाशवाणी के दिल्ली और जयपुर केन्द्रों का आभारी हूँ।
इस अवसर पर स्वर्गीय पं० उदयशंकर भट्ट
की स्नेहिल स्मृति से मेरा हृदय बरबस द्रवित हो उठा है।



अनु॰

# म र व ण

तथा

अन्य [illegible]

# उजली



[पृष्ठभूमि मे तूफान का दृश्य। मूसलाधार बरसात और हवा के तेज झकोरों की सनसनाहट के साथ बादलों की गड़गड़ाहट बिजली की कड़क, वृक्षों के हहराने और खिड़की दरवाजों के खुलने मुँदने और टकराने की आवाजें]

उजली बापू, देखो ता, फिर आया
यह कैसा भीषण मौसम है ?
क्या दुनियाँ के सारे बादल
आज बरस कर ही दम लेंगे ?
क्षुब्ध पवन को भी न ध्यान क्या
दीनजनो की झोपड़ियो का ?

अमरोजी - बेटी, प्रभु ही दया करेंगे
वही सहारे है निर्बल के
फिर भी सच है, रात आज की
लगता है, ज्यो काल-रात्रि है
जब हो जाए भोर तभी यह समझो,
ईश्वर ने सुनली है।

[दूर एक भटकते हुए घोड़े के टापों की आवाज सुनाई देती है]

**ऊजली** वापू, कौन दैव का मारा
निकल पड़ा है इस दुर्दिन में ?
या तो है यह दूत राज का
या कोई नादान शिकारी !

**अमरोजी** क्या जाने बिटिया, मनुष्य का
चेता हो जाता अनचेता भी !
यह सब प्रभु की ही लीला है
वही जानता, हम क्या जाने ?

[बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की कड़क इत्यादि जारी रहते हैं। घोड़े के टापों की आवाज एक बार विलीन होती हुई सी फिर उभर कर क्रमश: दूर से निकट आती हुई झोंपड़ी के पास आ कर रुक जाती है। झोंपड़ी के पास रुक कर घोड़ा दो तीन बार हिनहिनाता है।]

**अमरोजी** बिटिया, जल्दी बाहर जाकर देखो,
भूला-भटका राही
आया है यह कौन द्वार पर ?

[ऊजली दीपक हाथ मे थामे बाहर जाती है। हवा के झोंके से प्रकाश बुझ जाता है किन्तु तभी बिजली कड़कती है और उसके प्रकाश मे सामने का भयानक दृश्य देखकर चीख मार कर, भय और घबड़ाहट भरे स्वर मे—]

**ऊजली** वापू, वापू, जल्दी दौड़ो
हे भगवान, दृश्य यह कैसा ?
थका हुआ घायल घोड़ा है
और सवार अचेत पड़ा है !

अमरोजी : विटिया डर न, अभी मैं आया ?

[निकट आकर]

हे भगवान, विपद यह कैसी ?
इस भीषण आँधी-पानी में
जाने कौन दैव का मारा
आया असमय आज द्वार पर
यह निश्चय है, बेसुध है यह
लेकिन इसकी उमर-बेलड़ी
राम करे, बेहद लम्बी हो ।
धीर धरो बेटी, आओ
हम लें इसको उतार घोड़े से
और ले चलें भीतर घर में ।
कोई भी यह हो, प्रभु ने जब
इसे हमारे दर पर भेजा,
यह सम्मानित अतिथि हमारा;
इसकी रक्षा, इसकी सेवा,
यही हमारा प्रथम धर्म है ।

[अमरोजी और ऊजली दोनों मिल कर सवार को घोड़े से उतार कर घर के भीतर ले जाते हैं ।]

अमरोजी : विटिया, तुम घोड़े को बाँधो
तव तक करता हूँ प्रबंध मैं
अतिथि के शयनोपचार का

[ऊजली बाहर छप्पर में घोड़े को बाँध कर आती है इस बीच बिस्तर बिछा कर अमरोजी सवार को उस पर सुला देते हैं ]

ऊजली - बापू, तुमने आगन्तुक को
देखाभाला ? वह जीवित है ?
बोलो, कब तक उठ बैठेगा ?

अमरोजी बात नहीं कोई चिंता। की
अभी चल रही इसकी नाड़ी
किंतु शीघ्र ही
इसे उष्णता नहीं मिली यदि
तो खतरा है फिर इसके बुझते प्राणों को।

ऊजली पर बापू,
तुम कैसे गर्मी पहुँचाओगे शीत देह में ?

अमरोजी उढा-बिछा कर ऊपर-नीचे
गद्दे और रजाई कम्बल।

ऊजली किंतु हमारे पास कहाँ वे ?

अमरोजी . तो फिर प्रचुर जला कर ईंधन

ऊजली वह तो सारा भीग चुका है

अमरोजी तब तो पूरी लाचारी है
किन्तु अतिथि के प्राण बचाना।

ऊजली

बेटी, सबसे प्रथम धर्म है
प्राण अतिथि के मूल्यवान है !
अपने प्राणों से भी बढ़कर
अतिथि-प्राण रक्षा निमित्त यदि
कर दें हम सब कुछ न्योछावर
तो भी कम है, शास्त्र-वचन है !!

ऊजली : हम कब पीछे हटने वाले
अपने, इस मर्याद-धर्म से ?
पर कोई उपाय भी तो हो !

अमरोजी : एक उपाय सूझता मुझको
पर उसमें है कठिन परीक्षा
त्याग-धर्म के व्रतधारी की।
इन्द्रशील का और धर्म का
प्राणों को भय देने वाला....
नहीं, नहीं, तुम कितनी भोली हो,
कितनी अबोध पावन हो
मैं न कहूँगा तुमसे ऐसा करने को
जग में कोई भी पिता
न ऐसा कह पाएगा....

ऊजली : क्यों इतना सकोच कर रहे ? शीघ्र कहो न,
क्या न तुम्हें विश्वास सुता पर ?
अब न पहेली अधिक बुझाओ !

अमरोजी : बात यही है, प्राण अतिथि के
अब तो तभी बच सकेंगे
जब कोई इसके तन मे
अपने तन से ही गर्मी पहुचाए
काश कि मैं ऐसा कर पाता !
किंतु शेष है कहाँ उष्णता
जरा-जर्जरित इन अगो मे
ठिठुर रहे है ये पहले ही

कमली . बस, मै सब कुछ समझ गई
अब अधिक न कहो ..
ओह . लेकिन...
क्या यही इष्ट था तुम्हें विधाता . !
कैसा धर्म-सकट मे
अपने जन की कठिन परीक्षा लेना
ओह, आज यह विकट घडी
क्यो मेरे जीवन मे आई है ?
द्वन्द्व विषम उठ रहा हृदय मे
आज भावना मे विवेक मे
सस्कारो मे और टेक मे
जाग रहा है एक ओर
प्राणो मे करुणा का आराधक !

किंतु प्रबल संकोच न जाने
क्यो उसकी पूजा मे बाधक ?
यह कैसी है जटिल समस्या
यह कैसा संघर्ष विषम है ?
यदि तुमने दी है यह पीडा
तो मेरे प्रभु, साहस भी दो ।

अमरोजी धैर्य धरो, लो काम शांति से
ध्यान धरो निज इष्ट देव का
लेकर उनसे आत्म-प्रेरणा
करो तुम्हें जो उचित ज्ञात हो ।
पुत्री सौंप तुम्हारे हाथो
इस अज्ञात अतिथि का जीवन
दे अवसर एकांत मनन का मै चलता हूँ
लेकिन बेटी
भूल न जाना अतिथि-धर्म को ।

(अमरोजी का प्रस्थान)

ऊजली नही, नही, मै नही डिगूँगी
निज पवित्र आतिथ्य-धर्म से
दृढ विचारो की हठधर्मी
परम्परागत सस्कारो की
मोहजनित मिथ्या दुर्बलता

मरचरण ---

मुझे न विचलित कर पाएँगी
मंगलकारी मनुज-धर्म से
हे सीतामातः, हे सतियो,
तुम साक्षी हो, एक अकिंचन
नारी की इस वरण कथा की
जो कि अतिथि के प्राण बचाने
एक मनुज के प्राण बचाने
करती है अर्पित निज जीवन .
जीवन की सारी आशाएँ
अभिलाषाएँ आकाक्षाएँ
जो कि लगाने आज जा रही
मनुज धर्म के एक दाव पर
जीवन के सारे सुख-दुख को !
जो कि आज कर रही वरण
कुल-शील गोत्र-अज्ञात व्यक्ति को
प्रेरित हो कर त्याग-धर्म से'
हृदय स्वय ही बना पुरोहित
इस विवाह के अनुष्ठान का
और भाव ही मूक श्लोक है
नही वही मण्डप तोरण है
साज-बाज गाजे-बाजे की धूमधाम कुछ नही
सहारा सिर्फ एक है सप्तपदी का

[ऊजली अतिथि की शैया के चतुर्दिक सप्तपदी की परिक्रमा पूर्ण कर अतिथि के साथ शयन करती है। स्वल्प संगीत-विराम]

ऊजली : आधी से भी अधिक रात कुछ
बीत चली
पर नही अतिथि के तन मे
कुछ चेतनता आयी,
मेरा सुख-सुहाग क्या यो ही
सोता सदा रहेगा ?
हे प्रभु !
यदि मुझ मे सतीत्व है कुछ भी
तो प्रभात की प्रथम किरन के साथ
उदित हो मेरा भी सौभाग्य-सूर्य
जीवन के नभ मे

[प्रभात की प्रथम किरन का फूटना। पक्षियो की कलरव-ध्वनि। अतिथि का आश्चर्य से आँखें मलते और अँगड़ाई लेते हुए उठ बैठना]

अतिथि : यह क्या ?
मै क्या देख रहा हूँ ?
स्वप्न या कि यह छल है कोई
हूँ मे किस प्रदेश मे,
मेरे भृत्य कहाँ है, अश्व कहाँ है ?
और कौन हो तुम हे सुन्दरि
जिसने वदी किया न केवल मेरे तन को,
पर मेरे मन को भी

''मरवण

जिसने बांध लिया है
अपनी एक मधुर चितवन से !
जो कि अपरिचित होने पर भी
नही अजानी सी लगती है
अनधिकार यह कथन क्षम्य हो
लेकिन जान सकूगा क्या मै
परिचय

**ऊजली** जी, मे
उमरदान जी चारण की
इकलौती कन्या हू
सब कहते मुझे ऊजली
और आज से बनी
आपके चरणो की दासी

**अतिथि** यह कैसे ?

**ऊजली** एक देव सयोग सूत्र से
घर पर आए अश्वारोही
सज्ञा-शून्य अतिथि को मैने
वरण किया अपने तन मन से जीवन धन
जिससे कि अतिथि के प्राण
और मेरे सतीत्व के गौरव की
रक्षा हो जाए !
शेष रहा कुछ और जानना ?

अतिथि . नही सुन्दरी, यह यथेष्ट है
ज्ञात हुआ सब विवरण मुझको
किंतु जानना चाहूँगा मै
एक बात....
ऊजली ... क्या ?
अतिथि जिसने मुझको
वरण किया है दैवयोग से
धर्म-भावना से प्रेरित हो
या कि परिस्थिति के आग्रह से,
अब जब मैं हो उठा प्रकट हूँ
जब मेरा व्यक्तित्व अचानक
स्पष्ट हो उठा है, तब कोई
पछतावा तो वही नही है
उसके मन मे इस निर्णय पर !
ऊजली · नही, नही, यह क्या कहते हो ?
मै तो व्याकुल इसी भाव मे....
जिसको मैने समझा था
उपलक्ष मात्र अपनी पूजा का
धीरे-धीरे वही देवता
बन बैठा है मन-मन्दिर का
बिना देवता अब यह मन्दिर
सूना कैसे रह पाएगा ?

मरवण ...

**अतिथि** प्रियदर्शिनी नहीं तुम केवल
उससे बढकर हो प्रियवादिनि !
बरबस मन को हर लेता है
सुमुखि, वाक्-चातुर्य तुम्हारा

**ऊजली** तो फिर इसके पुरस्कार मे
देव, गौरवान्वित होगी क्या दासी
प्रभु का परिचय पा कर ?

**ऊजली** मै अधिपति काठियावाड का
छोटा सा है नाम जेठवा
एक बूंद भी जल की वर्षा
हुई नहीं इस बार राज्य मे
प्रजा त्रास से अति पीडित थी
तब ज्योतिषियो को बुलवाया
मैंने उनसे पूछा इसका कारण

**ऊजली** तब क्या कहा उन्होने ?

**जेठवा** कहा, किसी ने मृग-ग्रीवा मे
मन्त्र बांधकर छोड दिया है
जब भी कोई उसे मार कर
मन्त्र निकालेगा ग्रीवा से
तभी राज्य मे वर्षा होगी

**ऊजली** अच्छा फिर क्या हुआ ?

जेठवा  खोज में मैं उस मृग की
वन-वन भटका
आखिर उसे पकड़ पाया मैं
उसे मार कर ज्योंही
इसकी गर्दन में खाना पुर्जे को,
लगे मेघ घनघोर बरसने
और रात पड़ गई,
मार्ग में भटक गया
आँधी-पानी में संज्ञा-शून्य हुआ
जब मेरी संज्ञा लौटी
तो अपने को पाया मैंने
इस कुटिया में .

ऊजली  अहोभाग्य, कृतकृत्य हुई मैं
पा कर ऐसे प्रबल प्रतापी
और यशस्वी स्वामी

जेठवा ·                    रूपसि,
मात्र तुम्हारा जीवन-साथी हूँ
चरणों का सेवक हूँ मैं !
हो पाऊँगा प्राणदात्रि से
जन्म-जन्म तक उऋण नहीं मैं

ऊजली · आप वृथा लज्जित करते हैं
मुझ अनाथ को गौरव दे कर

मैं स्वामी की चरण-धूलि हूँ।
नही समाता आज हृदय मे
हर्ष-सरोवर उमड रहा
जो छलका पडता रोम-रोम से।
एक मधुर इस स्वर्णिम क्षण ने
किया सफल जीवन के तप को
पल मे शीतल सजल मेघ ने
बना दिया ज्योत्स्ना आतप को
किंतु

**जेठवा** किंतु क्या ?

**ऊजली** नही, कुछ नही।

**जेठवा** कुछ तो बात उठी है मन म
निज अभिन्न जीवन-साथी मे
जिसे छिपाना उचित नही है।

**ऊजली** कुछ भी नही, सोचती, यो ही
कही नही परिणत हो जाए
यह आकस्मिक हर्ष रुदन मे
सुनती हूँ मैं
पछतावा है परदेशी को हृदय लुटाना
जीवन मे दुखदायी होना
परदेशी से प्रीत जुडाना

परदेशी का प्यार, पवन का झोंका
मधुकर का मँडराना
परदेशी का प्यार, सुबह का स्वप्न,
मेघ का जल बरसाना
परदेशी का प्यार
हृदय के नभ में सुरधनु का मुसकाना
परदेशी का प्यार
पक्षी के दृग में शबनम का बन जाना
परदेशी का प्यार
नयन में आँसू मीठा बन उमड़ना
राह पड़ी जग ठहर, पथिक का
पलक मूँद आगे पग धरना . .

मेनका नहीं, नहीं, प्रिय कहो न ऐसे,
करो न यों मुझ पर आघातें
मैं तुमसे आजीवन उबरा
तन-मन-अर्पित वचन-बद्ध हूँ
अभी तुम्हें मोह-भंग ने घेरा
किन्तु विवश हूँ गन्धर्वों में
कारण पाके हो प्रिय, तुमको
एक मास की अवधि पूर्ण हो
अपने पास बुला लूँगा मैं
अभी मुझे आज्ञा दो,

क्या मैं भूल सकूँगा
प्यार और सत्कार जो कि मैंने पाया है
इतने दिवस यहाँ पर रह कर
प्रिये, तुम्हारे संरक्षण में !

ऊजली : करती हूँ विश्वास बटोही,
शेष और है क्या उपाय भी ?
किंतु हृदय तो धड़क रहा है
वे देखो आ रहे सामने ही, बापूजी
उनसे पूछो...
मैं तो तुम्हें विदा दे सकती
पर जाने की आज्ञा देने के तो
वे ही अधिकारी हैं

[अमरोजी का आना]

जेठवा : पूज्य-चरण ! है एक निवेदन ...

अमरोजी : ज्ञात तुम्हारा मुझे प्रयोजन
आयुष्मन्, मुझको सब अवगत
जाओ........
आशीर्वाद तुम्हारे साथ सदा मेरा है
लेकिन....
भूल न जाना निज वचनों को

जेठवा जो आज्ञा !

[जेठवा का घोड़े के एड लगाना। घोड़े की टापों की दूर जाती हुई आवाज का क्रमश विलीन हो जाना। प्रतीक्षा में अवधि का व्यतीत हो जाना स्वल्प संगीत विराम वन में ऊजळी का माला गूँथते हुए गाना]

## गीत

ऊजळी फिर-फिर आए दिवस सुनहरे
लेकिन मेरे सजन न आए
बैठी हूँ युग-युग से मैं तो
अगवानी में पलक बिछाए
प्राची की पलका मे फिर-फिर
छलक उठा आसव का प्याला
फिर-फिर मानस-तट पर आई
हसो की हीरक-हिममाला
फिर-फिर विहँसा शरद गगन मे
फिर-फिर सजल सघन घन छाए
जग से दूर, बनी बैठी हूँ
मन के मौन विजन की रानी
मै अपने प्रियतम की छवियाँ
रचती रहती हूँ मनमानी
इस अनजाने नदन-वन मे
कितने फूल खिले मुरभाए

चुन-चुन मन के मृदु सुमनों को
कितनी रुचि से हार बनाया
सींच-सींच कर नयन-नीर से
मुरझाने से इसे बचाया
प्रिय के चरणों में भेंटे कर
पर न इसे अर्पण कर पाए

[गान की ध्वनि क्रमशः विलीन हो जाती है]

अमरोजी पुत्री, कब तक काटेगी दिन
निराहार यों विस्मृत उन्मन
कब तक क्षीण किए जाएगी
मौन प्रतीक्षा में यों जीवन ?
यदि वह भूल गया निर्मोही
हमें उचित है
उसको अपने वचनों की
हम याद दिलाएँ
यदि वह यहाँ नहीं आ सकता
हम उसके महलों में जाएँ

[स्वल्प संगीत विराम। पिता पुत्री का राजमहल में जेठवा के समक्ष प्रस्तुत होना]

अमरोजी महाराज, शुभराज ज्ञात हो !
जेठवा आज्ञा हो कविराज, अचानक
कहिए कैसे हुआ आगमन ?

अमरोजी आप प्रश्न करते है मुझसे ?
कैसी विस्मयजनक बात है
क्या न आपको स्मरण,
आपने महावृष्टि की एक रात्रि मे
पाया था कुटिया मे आश्रय
प्राणदान मेरी पुत्री से
जो कि आपकी परिणीता है
और दिया था वचन आपने....

जेठवा मुझे स्मरण है....
किंतु आपकी, कहिए,
अब क्या अभिलाषा है ?

अमरोजी ग्रहण करें अपनी इस निधि को
और करें पालन वचनो का

जेठवा . मुझे खेद है, भावुकता मे
मैं वह सब कह गया कि जिस पर
मेरा कुछ अधिकार नही था ।
यद्यपि अब भी मैं अपने को
आभारी अनुभव करता हूँ
सेवा जो भी उचित बन सके
करने को सहर्ष प्रस्तुत हूँ
धन-धरती वाहन-वस्त्रादिक
जितना कहें, अभी अर्पित है

**अमरोजी** क्या यों कहते हुए
तनिक भी
लज्जा नही आपको आती ?
क्या समझा है मुझे आपने
अपने धन-प्रभुता के मद मे ?
मैं न द्रव्य का भूखा,
धन को
मै वचना से तुच्छ समझता
सुख-सुहाग ही निज पुत्री का
मेरा चिर सचित सपना है !

**जेठवा** उसके लिए विवश हूँ मैं,
यह पहले ही कह चुका आप से
आप स्वय है विज्ञ कवीश्वर,
क्या चारण-कुल क्षत्रिय-कुल मे
यो विवाह-सम्बन्ध विहित है
क्या न धर्म के, मर्यादा के, परम्परा के
यह विरुद्ध है ?

**अमरोजी** कहाँ शास्त्र मे यह निषिद्ध है ?

**जेठवा** मै न शास्त्र का ज्ञाता पडित
मै तो यही जानता हूँ बस
जो भी परम्परा मे प्रचलित
वही शास्त्र- अनुमोदित भी है

ओर और फिर,
बात एक यह भी है
मै स्वाधीन नही हूँ
मेरी गतिविधि, मेरा सारा जीवन
जन-हित मे मर्यादित
मैं नरपति हूँ
किंतु नही हूँ
अपने मन का ही, अधिपति मै ।

अमरोजी  केवल एक बहाना है यह
अपनी मनमानी करने का
रागरग वैभव-विलास यह
क्या यह जनता के हित मे है ?
भोगपूर्ण जीवन जीने का
किन स्मृति-शास्त्रो मे विधान है ?

जेठवा  शिष्टाचार न भूलें कविजन
ध्यान रहे निज सीमाओ का
मै न बँधा हूँ इस परिणय से।
मै था सज्ञाशून्य
नहीं थी मेरी इच्छा
मेरी स्वीकृति
इसीलिए यह एकागी है

अमरोजी किंतु पुष्ट है अभिवचना से
जो कि वाद में दिए आपने

जेठवा जो भी हो
बस जो कुछ मुझको कहना था
कह दिया आपसे
नहीं चाहता तर्क अधिक मैं

अमरोजी सच है, सच है,
प्रभुता ही इस जग में
सबसे प्रबल तर्क है!

जेठवा राज्य-प्रतिष्ठा की मर्यादा का
यह तो है स्पष्ट उल्लंघन
यह असह्य है, [ताली बजाकर] अरे कौन है,
है कोई प्रतिहारी?

[प्रतिहारियों और राज्य सेवकों के आने की हलचल]

ऊजली बापू!
सुन न सकूँगी और अधिक मैं
है नारीत्व यहाँ अपमानित
और प्रवंचित है पौरुष भी
बापू, बापू, चलो यहाँ से
चलो चलो
मैं रुक न सकूँगी।

[ऊजळी का अमरोजी को हाथ पकड़े हुए शीघ्रता से ले जाना। दोनों का तीव्र पद सञ्चरण सुनाई देता रहता है। पृष्ठभूमि में करुण संगीत]

अमरोजी बिटिया, हम वन के वासी हैं
हमें झोंपड़ी ही अच्छी है
वही हमारा अपना घर है

ऊजली घर ? अब मेरे लिए कहाँ है ?
मैं परिणीता परित्यक्ता हूँ
मेरा तो घर कहीं नहीं है
अब मैं प्रभु की ही शरणागत।
तुम घर जाओ
और मुझे
तुम सदा क्षमा ही करते रहना
मैं अभागिनी
तुमको मैंने
कष्ट सदा ही दिया
हाय, मैं जन्म न लेती तो अच्छा था...

[ऊजळी का हाथ छुड़ाकर तेजी से प्रस्थान। तीव्रतर करुण संगीत स्वर]

अमरोजी बेटी, बेटी, कहाँ चली तुम
मुझ बूढ़े को छोड़ अकेला
यह कैसा पागलपन
ठहरो, सुनो....

मरवण····

ऊजली    नहीं, मैं रुक न सकूंगी
जीवन है अभिशापित मेरा
यह जग छलना से लांछित है
कहे न कोई आज मुझे कुछ
मै न सुनूंगी, मैं न रुकूंगी

[तेजी से दौड़ते हुए जाना]

अमरोजी    चली गई, हा, मुझे छोड कर
उसके बिना सहारे,
कैसे काटूंगा मै दिन जीवन के ?
हाय ऊजळी,
हाय अभागी बेटी

[फूट फूट कर रोते हुए पछाड़ खा कर गिर पड़ना। ऊजळी भागते भागते समुद्र तट पर आ खड़ी होती है]

ऊजली    (स्वगत) शेष रहा क्या अब जीवन म
दूर चली आई मै जग से
टूट चुका है मोह स्वप्न-सा
नही कामना कुछ जीवन म
नही किसी से है कुछ आशा
नही किसी को उपालभ है
शात और निर्वैर यहाँ मन
निर्मल नील अनत गगन सा
इस अनन्त सागर के तट पर

[दृश्यान्तर  अपने महल मे जेठवा स्वगत सवाद में निमग्न]

जेठवा पिता और पुत्री
दोनों ही चले गये हैं
किन्तु न जाने
क्या अब भी उद्विग्न हृदय है
वृद्ध कवीश्वर की मुख मुद्रा
या प्रतीत होता है जैसे
अब भी मुझसे पूछ रही है
"बोल, कौन दोषी है
स्वेच्छाचार और विश्वासघात का ?
एक पवित्र सरल बाला के
जीवन के निर्मम विनाश का ?"
गूंज रहे हैं अब भी वे स्वर
"मैं न द्रव्य का भखा,
धन को मैं वचना से तुच्छ समझना"
डँसते हैं सौ-सौ बिच्छू से
अट्टहास करती हैं मुझ पर
मेरे महलों की दीवारें
अँगुली उठा-उठा कर मुझको
चिढ़ा रहे हैं कोट-कँगूरे
और ऊजली की वे आँखें
हरिणी की सी निश्छल आँखें
हैं कुरेदती मुझे शूल-सी !

मुझे शून्य में वे आँखें
सर्वत्र नाचती दीख रही हैं
इनसे कहाँ बचूं मैं ? जाऊँ किधर ??
दिशाएँ भी तो सारी
मुझे आज दुतकार रही हैं
फब रही हैं दूर अब से !

[दृश्यान्तर, समुद्र-तट पर एकाकी ऊजळी]

ऊजळी आई हूँ मैं दूर जगत से
इस निर्जन समुद्र के तट पर
किंतु यहाँ भी यह कैसा है
कोलाहल यह गर्जन-तर्जन
इस विशाल सागर-उर में भी
है क्या कोई द्वन्द्व चल रहा ?
वैसा ही कुछ
जैसा रह-रह कर उठता है मेरे उर में
जब-जब भी आता है मुझको याद
एक वह क्षण जीवन का
वह क्षण,
जिसने मेरे सारे सुख स्वप्नों में
आग लगा दी !
प्रवञ्चना का तिरस्कार का
एक कुटिल क्षण

जो करता है
अभी यहाँ फट जाए धरती
और समा जाऊँ मैं उसमें

[दृश्यान्तर; राजमहलों में उद्विग्न जेठवा]

जेठवा मेरे तन के रोम-रोम में
मेरे प्राणों के अणु-अणु में
कैसी अनबुझ आग लगी है
जला जा रहा हूँ मैं इसमें !

[दृश्यान्तर; समुद्र-तट पर ऊजळी]

ऊजळी पर न फटेगी यह धरती
यह अति कठोर है
किंतु क्या हुआ ?
सागर अति व्यापक उदार है !
उठा-उठा कर हाथ लहर के
करता है जैसे आमंत्रित
निज वत्सल सुविशाल अंक में
सन्तापित को आश्रय देने !!
किंतु करूँ स्वीकार निमंत्रण
इन लहरों का
उसी पुरुष के लिए
कि जिसने ठुकराया है
मेरा सच्चा प्यार गर्व से ?

[दृष्यान्तर, राजमहलों में जेठवा]

जेठवा किसी सरल बाला का कोमल
कुसुम-सरीखा हृदय कुचल कर
खूब बना बैठा तू राजा
बार-बार धिक्कार तुझे है !
बन न सका तू सच्चा प्रेमी
बन न सका तू सच्चा मानव
पारस को छूकर भी मूरख
उज्ज्वल कंचन बन न सका तू !

[दृष्यान्तर, समुद्र तट पर ऊजळी]

ऊजली नहीं, नहीं, वह तो राजा है
जिसने मुझे किया अपमानित
मेरा प्रेमी तो वह है
जो था मेरी कुटिया पर आया
पा कर मेरा स्पर्श कि जिसके
तन मे था जीवन लहराया
मेरे आकुल रोम-रोम मे
सांस-सांस मे वही समाया
इस सध्या-वेला मे
सूरज बना वही तो है मुसकाया !

[दृष्यान्तर, राजमहलों मे उद्विग्न जेठवा]

जेठवा नाच रही है अब भी
मेरी आखो मे उसकी ही आँच

जिधर देखता, उधर दीखती
उसकी ही उज्ज्वल अनुपम छवि

[नेपथ्य से पुकार 'जेठवा ! मेरे जेठवा']

यह देखो पुकारती है वह
हां आवाज उसी की तो है
अब न अनसुनी कर सकता मै
कौन ? ऊजली ?? मेरी अपनी
सदा-सदा के लिए ऊजली
आया .. आया अभी प्रिये मै

[जेठवा का बेतहाशा दौड़ते हुए जाना]

ऊजली . वह देखो, वह सिंधु पार से
बुला रहा है मेरा प्रेमी
कौन, जेठवा ?

जेठवा . प्रिये ऊजळी !

ऊजली . बुला रहे हो आज
क्षितिज के पार मुझे तुम
मैं न रुकूंगी, मै आऊँगी
जहाँ कहीं तुम मुझे मिलोगे

जेठवा : (दौड़ते हुए)
प्रिये ऊजळी, प्रिये ऊजळी ! ...

ऊजली : व्यग्र हुए जाते हो क्यों यों

हे मेरे युग-युग के प्रेमी !
लो, आई मैं
तुममे चिर-विलीन होने को

[ऊजळी का समुद्र म छलाग लगा जाना]

जेठवा प्रिये ऊजळी

[दौड़ता-दौड़ता आ कर समुद्र-तट पर रुक जाता है]

रुक न सकी तुम दो क्षण को भी
यह बाजी भी रही तुम्हारे हाथ मानिनी
तुम ही जीती
पर न रहूँगा मै भी पीछे [छलाग लगाता है]

[करुण गभीर सगीत[

एक कण्ठ मनवन्ती नारी ने रख ली
लज्जा अपने प्रण की !
अभिनव किया प्रकाश
जला कर ज्योति दिव्य जीवन की
अमर रहेगी युग गयु तक यह
उज्ज्वल गौरव-गाथा !
अमर प्रेम की चिर समाधि पर
सदा झुकेगा माथा !

□ □

# निहालदे



(पृष्ठभूमि में पावस का दृश्य। हवा के झकोरे। बूँदों की झिरमिर। झरनों की झरझर। बीच बीच में मेघों का मन्द्रगर्जन कोकिल, पपीहे मोर आदि की ध्वनि। धीरे धीरे निम्नलिखित गीत के वाद्य स्वर उभरते हैं।)

किशोर स्वरों में
समवेत सहगान

## गीत

आया, आया, सावन, आयी सावन की बहार
नाच रही है पुरवाई की लहरें हलकी-हलकी
नाच रही हैं पात-पात पर नन्ही बूंदें जल की
नाच रहे हैं मोर मगन हो अपने पंख पसार
बूंदों की पायल से झरते रिमझिम छन्द सुहाने
यौवन में मदमाते झरने छेड़े मस्त तराने
कोयल कुहुके, करे पपीहा पीऊ-पिहू पुकार
आओ हम भी नाचें गाएँ हम भी मोद मनाएँ
मोर बन कर मस्त पवन में हम भी उड़-उड़ जाएँ
मेघ गगन में घूमें हम भी वन में करें विहार

एक बालक  देखो कैसे फूल खिले हैं, गूँथे इनका हार

दूसरा बालक  नहीं, नहीं, गीली मिट्टी का करें दुर्ग तैयार

तीसरा बालक  मैं तो रंगवाली तितली पकड़ूँगा दो चार

चौथा बालक  तुम सब मूर्ख, करेंगे हम तो जी भर आज शि

सब  वाह-वाह, क्या बात कही है तुमने मजेदार
आया, आया सावन, आयी सावन की बहार

एक  वह देखा, वह हरी-हरी डाली पर बैठा कीर

दूसरा  जल्दी, जल्दी, करो न देरी, जल्दी छोड़ो तीर

[सुल्तान का तीर छोड़ना। तीर का चूक कर बाग के बाहर
पानी भरती हुई कन्या के कलश पर लगना। कलश का फूट जाना]

बालिका  उई, न जाने कौन दुष्ट है
जिसने मेरी गागर फोड़ी ?

सहेली  और कौन होगा, यह तो उस
राजकुँवर की शैतानी है
खेल रहा होगा शिकार जो
राजमहल की इस बगिया में।
आओ चलें कहें घर चल कर
ताकि उसे भी पता चले कुछ

वाचक वह ब्राह्मण कन्या सखियो को
संग लिए अपने घर पहुँची
बात बताई सभी पिता को
फैल गई यह खबर हवा सी
फैल गई हलचल नगरी मे
सब पुरवासी हुए इकट्ठे
और कराने न्याय प्रमुख जन
ले कर तीर और फूटा घट
पहुँचे चल कर राजमहल में
किया निवेदन या राजा से—

एक वृद्ध महाराज, है कभी न ऐसा
हुआ आपके धर्म राज्य में
बहन-बेटियो की मर्यादा
आप सदा रखते आए हैं
उच्च आपका राजवश है
जिसमे वेण सरीखे जन्मे
जगप्रसिद्ध राजा सतधारी
बुद्धि-तुला पर सदा जिन्होने
तोला न्याय धरम-बाटो से
जिनके सत के बल पर
सातो पवन झूलते अनरिक्ष मे
फिरती थी जिसकी नि दुहाई

अखिल चराचरमयी सृष्टि मे
जिसका वचन-मान रखने को
दाना चुगते हुए विहग भी
अपनी चोच हटा लेते थे,
जहाँ कि चीटी भी चीटी को
नहीं कष्ट पहुँचा सकती थी।
उसी राज्य कुल मे...

कन्या का पिता — हे राजन्!
है विख्यात, कुमारी कन्या
तुलसी का पावन पौधा है
गगा की दूधिया धार है
है चदन से भरी कटोरी
बिना सीग की बछिया भोली
उससे छेड-छाड करना है
मानो सिर पर प्रलय बुलाना
रस्ते चलती एक कुमारी
कन्या के जल भरे कलश को
राजकुँअर ने किया तीर से खण्डित
यह अच्छा न किया है
इसका सही न्याय-निर्णय कर
अपराधी को उचित दण्ड द!

वाचक — यह विवाद सुनते ही
राजा हुआ क्रोध से आगबबूला

निर्जन वन में भटक-भटक कर
शिला-शिला सिर पटक-पटक कर
करने लगा विलाप कुँवर यों

सुलतान बैठे-ठाले ही राम, बिन न्योते बिना बुलाये
साँसत गले में कैसी आ पड़ी ?
पख लगा उड़ जाते हैं युग के युग भले दिनों में
विपदा की तो कठिन है दो घड़ी !
हँसी-खुशी में तो सारी उम्र गुजर जाती है यों
चार पहर की चौपड़ ज्यों मँडी
काले कोसों में फैली विपदा की ये घड़ियाँ
घोड़ों से काटे भी कब ये कटी ?
अन्तस में उठती है झळ तपती लूवों की हरदम
आँखों में लागी सावन की झड़ी

याचक गिरते-पड़ते भीख माँगते
इसी वेष में इसी दशा में
जा पहुँचा सुलतान कोचगढ़।
एक दिवस वह बाजारों में
भीख माँगने जब निकला था
कमधज राजा की आ पहुँची
बड़ी शान से उधर सवारी
घोड़ों का घमसान मच गया
इसी हड़बड़ी बीच

दाता को मेरे हाथों में
फटा आज ठीकरा तक भी
नहीं सुहाया, हाय विधाता !

राजा  करो न इतना रोना-धोना
व्यर्थ न यों काया को दाभो
तुम्हें गढ़ा देंगे हम भिक्षा-पात्र एक
बहुमूल्य स्वर्ण का
और सिला भी देंगे तुमको
एक नयी रेशम की झोली
और फेरने को दे देंगे
सच्चे मोती की माला भी
यहाँ रचा लेना मेरे ही गढ़ में तुम
चंदन की धूनी
करते रहना भजन उम्र भर
दूध-दही की भिक्षा लेकर
साधो अपना योग चैन से।
किन्तु दीख पड़ते तुम मुझको
बालक किसी कुलीन वंश के
वंशगोत्र और जाति कौन सी
और तुम्हारा नाम-ग्राम क्या ?

सुलतान  हे राजन्, ईडर के राजा
मैनपाल का बेटा हूँ मैं

निन उठने ही मैं पग धरता
साक्षी है मेरे वचनो को
यदि मै निज वचना को हारूँ
साक्षी है यह अन्न नीर भी
जिसमे वसते प्राण जगत के
चाहे पृथ्वी और गगन भी
अपना-अपना स्थान छोड द
मै न हटूंगा अपने प्रण से !

वाचक समझा-बुझा वचन दे वर या
महलो मे सुलतान कुँवर को राजा लाया
और कहा यो
पटरानी से

राजा हे रानी जी !
आज अमित आनद मनाओ
आज करो उत्सव आयोजित
आज तुम्हारे आँगन मे है
वह फल टूटा देव-कृपा से
ले कर जिसकी तीव्र लालसा
झूर-झूर वन्ध्या मर जाती
देवी और देवता सारे
मँहगे हो जाते दुनियाँ के
अगली-पिछली सात पीढियो के
जिससे बधन कट जाते

अम्बर ने पटका है तो धरती ने झेला मुझको
छोटी सी उमर मे जोगी मैं हुआ

वाचक देख वाक्चातुर्य कुँवर का
हर्ष अपार हुआ रानी को
उसने नाई को बुलवाया
तुरत कुँवर के केश कटाए
अगराग मल स्नान कराया
नये रेशमी वस्त्र पिन्हाए
ओप उठा वह राजकुँअर सा
पहुँचा जाकर राजमहल मे
जहाँ कि थे आसान पर राजा
थे क्षत्रिय सामत अनेको
जो कि गिद्ध सी ग्रीवा वाले
जिनकी अनियारी मूँछें भी
कानो को छू-छू जाती थी
नेत्र चमकते थे दीपक से ।
देख कुँवर का रूप राजसी
सभी चमत्कृत हुए, नृपति ने
सिंहासन की सीढी पर ही
बिठा लिया सुलतान कुँवर को ।
इतने मे परवाना लेकर
दूत इद्रगढ से मगपति का आया,
उसने पत्र पढा यह

मरवण

सूत्र  राजकुमारी निहालदे रा
होणा वाळै सोरठाण स्वयंवर
दिवस बसंत पंचमी रो शुभ
जो था पड़ चौक पर
भरयो राज ऊपर दिन्यो महलाँ रा
इण मेळ में उणरी इच्छा जाणेरा,
उणरी ही धोरा
शोभित हुणी दरबारां में ।

वाचक  राजा री सुरताल और
निज पाटूँदल रा मेवाड़ पहुँचे,
देश-देश रे राजपूत पे
गयो हरखूँ समाचार म।
राजे राणे राजकुँवर रो
दिशा मिला अवसर, वर पहुँचा
बना गढ़बन्धान सेवर
वर मनी निहालदे देख रहा था
मानी-ज्ञानी कुँवर वनेरो धार
मेदिन किरण हो रातू ।
गर्दा सा बे चवा रोग जिन

(दोनों का स्वरूप)

बना, मन ... सेवर
सुरताल कुँवर री माया

भाग्य को अजमाने
कर स्मरण इष्ट का
छोडा तीर
[तीर का छूटना] वेध मछली को
जो विलीन हो गया गगन मे
वजने लगी मधुर शहनाई
[नौबत और शहनाई का बजना]

**वाचिका** चारो ओर छा गई खुशियाँ
होने लगी पुष्प वर्षा भी
निहालदे ने अति प्रसन्न हो
पहनाई वरमाल कुँवर को
फूले नही समाए राजा

लेकर वे निहालदे को
सुलतान कुँवर को धूमधाम से
आए मुदित राजधानी मे
पहुँचे महलो के दरवाजे

**वाचक** . रानी भी यह सोच कि
बेटा फूलकुँवर ही जयी हुआ है
पायल की झनकार गुँजाती
पहुँची करने स्वय आरती
किंतु देख सुलतान खडा है
सेहरा बाँधे निहालदे सँग

सम्मुख गल-जटिल चोटी पर
टिठक गई वह एकबारगी
आग लग गई सारे तन में
छूट गई थाली भी कर से
[थाली के छूट कर गिरने की आवाज़]
बोली फिर यों ज़हर उगलती

रानी : रे बनजारे कल तक तो तू
फिरता था दाने चुग-चुग कर
भीख माँगता गली-गली में
और आज गड़रिये का बेटा बन कर
चाह रहा है मुझसे
मैं तेरी आरती उतारूँ ?
हूँ हूँ, आरती करूँ, तेरे सिर पर
काली हाँडी फोड़ूँ मैं
रे निगोड़े, मरे ठगी की है
तुमने जोगिया,
राज्य में प्रजा हमारे
जग भी देख !
ऊपर पल भर को भी यदि तू
अपना काला मुँह दिखलाए !—

बादल : हाय गीत-सी मधुरी कुँवर के
गड़ा हो ज्यों दीप जला कर

चलने लगा खोल गँठजोड़ा
तभी पकड कर छोर वस्त्र का
करने लगी पुकार नव-वधू

निहालदे छोड मुझे यो बीच धार में
कहाँ जा रहे नाथ आप हैं ?
यहाँ नही देवर जेठानी
यहाँ न मेरे सास-ससुर है
पीहर छूट गया है पीछे
बिछुड गई हूँ मैं सखियो मे
अपने मात-पिता परिजन से
ज्यो हरिणी टोले से बिछुडे
सभी अपरिचित और पराए
यहाँ कौन है रक्षक मेरा
मेरा अपना सगा कौन है ?

कुँवर मुझको तो जाना ही होगा
क्यो कि दशा मेरी आई है
किंतु साथ तुम क्यो दुख पाओ ?
मेरा क्या है, जैसे-तैसे
कट ही जाएँगे ये दुर्दिन
किंतु वहाँ तक मारी-मारी
मेरे साथ फिरोगी तुम भी ·
रहो यहाँ निश्चिन्त निरापद

राजा मेरे धर्म-पिता हैं
तुम्हें न होगा कष्ट तनिक भी
द्रव्य तुम्हारे पास बहुत है
दास-दासियाँ भी सेवा को।
सावन की इस प्रथम तीज को
तुमसे नहीं मिलूँगा आकर…

वाचिका यह कह कर गुणवान कुँवर तो
चला गया, रह गई अकेली बाम
उधर हिरन निहारे
सावन-झूले बँधे रह गए
और उसके [illegible] की
मन ही मन रह गई अधूरी
जैसे-जैसे वह वियोगिनी
लगी काटने दिन विरहा के
धीरे-धीरे उधर कुँवर भी
[illegible] पहुँचा [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

वाचक [illegible]
[illegible]
[illegible]

स्वप्न वासना के कुरूपतम
उसने यो सुलतान कुँवर को
झूठ-मूठ ही कहला भेजा
मृत्यु हो गई है निहाल की
इधर रोक लेता निहालदे के
सारे सदेशो को वह

**वाचिका** यो भ्रम की दीवार खडी कर
लगा डालने अपने डोरे
किंतु न उसकी चली एक भी
पतिव्रता नारी के आगे
जो कि सदा अपने ही पति के
चिंतन मे खोई रहती थी
जिसके नेत्रो मे पति की ही
मूर्ति सदा नाचा करती थी

**वाचक** एक बार मरने से पहले
अंतिम एक उपाय रूप मे
उसने निज ऊदा दासी को
मारवणी के नाम व्यथायुत
अपना यो सदेश लिखाया

**निहालदे** सिद्ध श्री परवाना नरवर कोट को
मारूरानी को सात सलाम ·
निहालकुँवरि का एक सदेशा बाँचना""

तेरी तो नगरी में हे रानी है यह कैसी रीत........
एक म्यान में हैं दो-दो तलवार
नरवरगढ पर पड़े कड़कती बिजलियाँ
गढ तेरा हो जाए पानी ढ़ाल
तेरी चोटी में डँसले काला वासुकि नाग
तेरी तो नगरी में हे रानी है यह कैसी रीत........
अंगुलियों पर गिन-गिन काटी मैंने ग्यारह तीज
मेरे स्वामी को निर्दय मरूू तुमने है ठगा
अब की तीजो को देना मेरे पति को भेज
नही तो लगेगा तुम को पाप
अगनी में यह काया दूँगी होम !

वाचक · चार चतुर अश्वारोही ले
यह सदेश चले नरवर को
जब वे पहुँचे नरवरगढ में
होने लगी जोर की वर्षा
पडी साँझ भी, और दुर्ग के
थे मंगल हो चुके द्वार भी
था सदेश बहुत आवश्यक
पर अब उसको कैसे भेजें ?
तब उनको सूझी चतुराई
लगा अश्व महलों के नीचे
अपने भालों की नोंकों में

अपने साफे बाँध-बाँध कर
रोक दिए चारो ने
महला के चारो बहते परनाले
हुआ ध्यान आकर्षित मारू का,
उसने बाँदी को भेजा
बाँदी ने देखा तो पूछा

**बाँदी** अरे कौन हो तुम ?
महलो के नीचे क्यो बेवक्त खड़े हो ?

**सवार** हम रस्ते चलते परदेशी,
अश्वारोही है, प्यासे है

**बाँदी** प्यासे हो, तो नही दीखता
बरस रहे मेघा सावन के

**सवार** बहता पानी पीने की है
चली आ रही आँट हमारे
झारी का जल मिले, तभी हम
पी कर प्यास बुझा सकते हैं

**वाचक** बाँदी ने यह सुन
मारू की आज्ञा से झारी लटकाई
जिसमे रख कर दूतो ने
पहुँचाया सदेशा निहाल का
और चल दिए अपने पथ पर

वाचिका मारू को जब ज्ञात हुआ सब
स्नेह भरी दे मधुर ताडना
उसने सब सुलतान कुँवर से
कहा तुरत ही चल देने को
निज पत्नी की सुधि लेने को

वाचक अगले दिन थी तीज सावनी
कुछ पाथेय तुरन्त साथ ले
झटपट कस कर जीन अश्व की
हो सवार सुलतान चल पडा
अपनी प्रेयसि से मिलने की
लेकर उत्कट अमित उमगें !

[घोडे की टापों की क्रमश: प्रबलतर आवाज]

वाचिका चलते-चलते जब थोडी ही दूर
रह गया कीचकगढ
तो देख मार्ग मे वड की गहरी छाँव,
सोच कुछ सुस्ताने की
वाँध अश्व को एक ठूँठ से
लेटा कुँवर थकान मिटाने
दिन था अभी दो घडी बाकी
और कीचगढ वहुत निकट था
सावधान सुलतान वहुत था ।

पर लेटे-लेटे अनजाने
उसको निद्रा ने आ घेरा

**वाचक** उधर महल मे चिता सजा कर
निज निश्चय अनुसार
अग्नि मे थी निहाल तत्पर जलने को
ऊदा धीरज बँधा रही थी

**ऊदा** यो दिल छोटा करो न रानी
अभी दो घडी दिन बाकी है
मेरा मन तो यह कहता है
तप न तुम्हारा असफल होगा
आज अवश्य कुँवर आएँगे

**निहालदे** हे ऊदा, आशा-आशा मे
बारह वर्ष व्यतीत हो गए
तो अब इन अतिम दो निष्ठुर
घडियो की आशा क्या करना ?
दीख रहा है स्पष्ट लिखा जो
मुझ अभागिनी के ललाट मे

**ऊदा** नही, नही, यो धैर्य न खोओ
[कौए का बोलना]
देखो, बोल रहा है कागा
मेरे सारे शकुन कह रहे
मिलन तुम्हारा पति से होगा

निहालदे शायद तेरी बात ठीक हो
मेरी भी है रह रह कर
यह वायी आख फडकती
कागा यदि साजन आएँ तो उड जा

## गीत

उड जा रे कागा साँझ पडी
चार पहर वाटडली जोई मेडी खडी रे खडी
रिमझिम वरसे नैंण दिरधडा
लग रही झडी रे झडी
उड जा रे कागा साँझ पडी
पल-पल बीते बरस बराबर पिछली जाए र घडी
उड जा रे पखेरुआ साझ पडी
उड जा रे

[कौए का बोलते हुए उड जाना]

वाचक उडते उडते कौआ पहुँचा
उस वट की शाखा पर
जिसके नीचे था सुलतान सो रहा
बैठ शाख पर बार-बार वह
लगा बोलने जोर जोर से

[कौए का जोर-जोर से बोलना]

सुन उसकी आवाज कुँवर
झट जाग उठा, निज आँखें मलते
देखा, सूरज छिपने को है
घबड़ाया वह बहुत हृदय में
झट सवार हो बड़े वेग से
उसने घोड़े को दौड़ाया

[घोड़े के टापों की आवाज क्रमशः तीव्र से मंदतर]

उधर लगी कहने निहालदे
यों निराश होकर ऊदा से

निहालदे  हे ऊदा ! अब छिपने वाली हैं
अंतिम किरणें सूरज की
मेरा अंतिम समय निकट है

ऊदा : अशुभ बात यों कहो न मुख से
अभी समय है…

निहालदे  नहीं, नहीं
तू मुझे व्यर्थ अब यों मत बहला
मुझे नहीं है खेद मरण का
बल्कि मुझे है हर्ष
आज मैं निभा सकूँगी अपने व्रत को
तू भी शोक न मना व्यर्थ ही
हे ऊदा, मेरे जीवन में

सदा रही तू अंतरंग सखि,
मेरी अपनी बाल सहेली
मेरी अपनी सगी बहन सी
बल्कि बहन से भी बढ कर तू
ज्यों मेरी अपनी हो छाया
सुन तू चित दे, जो कुछ भी मैं कहूँ
उसे तू टाल न देना।
हे ऊदा, तू मात-पिता को
मेरा चरण-स्पर्श कह देना
कहना, वरकर याद मुझे
वे करें न ज्यादा दुखी हृदय को
यही सोच संतोष मना लें
बदा यही था मुझे भाग्य मे
और मिलें जो सखी-सहेली
उन्हें गले-मिलनी तू कहना
पीहर के सारे लोगो को
कहना मेरी राम-रमी तू
और देख, यदि तेरा जीजा
भूला-चूका आ जाए
तो उसको देना ढाढस
उससे मेरी छोटी बहन ब्याह देना तू
मेरी माँ से कहकर
मेरे पीछे से कोई भी

कष्ट न हो तेरे जोजा को
हे ऊदा अब अन्तिम क्षण मे,
विदा मांगती हूँ तुझसे भी
इन पिछले बारह वर्षों के
मेरे दु खभरे जीवन मे
तू ही मेरी छाया बन कर
मुझको सहलाती आई है
अपने प्यार भरे हाथों से
तू ही आज चिता को मेरी
अत घडी मे भी चिन देना ।

[घोड़े के टापों की कमश. निकट आती हुई ध्वनि और करुण वाद्य स्वर]

वाचक यह कह कर चढ गई चिता पर
इधर वीर क्षत्राणी
उधर गगन मे डूब गई
रवि की आखिरी निशानी
ऊदा ने दी अग्नि चिता को, प्रकट हो उठी ज्वाला
था उसका आलोक, सूर्य से बढकर दिव्य निराला
तभी अश्व को दौडाता सुलतान वहाँ पर आया
टिका चिता पर पैर अश्व के, उसने हाथ बढाया
फूलकुँवर के धोखे वह उसको पहचान न पाई

बोलो, मुझे न छूना तू है सदा धर्म का भाई
एक भ्रांति ने पुनः सँवरती दशा भाग्य की फेरी
पति के सम्मुख, जल कर पत्नी हुई राख की ढेरी

**याचिका** मरते-मरते निभा गई
निज प्रण वह सती भवानी
याद रहेगी युग-युग
उसकी उज्ज्वल करुण कहानी

—•—

मरवण.

# मरवण



[पृष्ठभूमि में मांड राग मे 'केसरिया बालम आवो नी पधारो म्हारे देस' की संगीत लहरियां गूँजती हुई क्रमश विलीन होती है।]

वाचक पूगल मे पिंगल था राजा
नरवर मे नल का शासन था
दोनो थे न परस्परपरिचित
दैवयोग से किंतु बंध गए
एक दूसरे के समधी बन
दोनो अमिट स्नेह-बंधन में।

वाचिका बात हुई यो, एक बार था
पूगल मे दुष्काल पड गया
विषम परिस्थिति देख, कर !
पिंगल ने प्रयाण नरवर को।
नल ने यथायोग्य आदर दे
सम्मानित की आव-भगत की

वाचक राजा नल के ढोला नामक
एक कुंअर था, जिसे देखक

रीझ गई पिंगल की रानी।
निज सुन्दर पद्मिनी-स्वरूपा
मारवणी नामक कन्या के
योग्य देख कर, पति से बोली—

रानी . स्वामी, ढोला की मारू की
जोड़ी यह अनुरूप बनी है
यह विवाह सर्वथा उचित है,
आप शीघ्र सम्बन्ध कीजिए

राजा . सोच-समझ कर तो बोलो प्रिय,
दुर्दिन में यदि कन्या दूँ, तो
क्या मेरा उपहास न होगा ?

रानी · क्या न सुना है नाथ आपने ?
मीन सरोवर त्याग न सकती
आम्र-वृक्ष ही घर कोकिल का,
व्यर्थ न सोचो, उचित सर्वथा
कन्या-दान.. ........

राजा : तुम्हारी इच्छा
करो तुम्हें जो उचित ज्ञात हो।

रानी . मैंने यह सम्बन्ध कर दिया।

वाचक : ढोला-मारू का विवाह यों
बचपन में ही धूमधाम से

ठाट-बाट से गाजे-बाजे से
सकुशल सम्पन्न हो गया।

[पृष्ठभूमि में विवाह के मांगलिक वाद्य-यंत्रों का सङ्गीत और मन्त्रोच्चार के स्वर]

वाचक : फिर से हुआ सुकाल देश मे
पिंगल लौट गया पूगल को
बीत गए फिर वर्ष अनेकों।
राजकुमारी मारवणी भी
क्रमशः प्राप्त हुई यौवन को
अंगों में उमड़ी सुन्दरता

वाचिका : जब थी सेज बिछा कर सोई—
मिला स्वप्न में एक दिवस
प्रिय साल्हकुमार, नींद फिर उच
मधुर प्रेम-रस में प्रिय-स्मृति में
लीन हुई मुग्धा मारवणी
कोमल करतल पर कपोल रख
लगी खोजने खोयी-खोयी
थाह विरह की, जो पलकों में
घिर-घिर आया और छा गया
उमड़ प्रलय-कालीन मेघ-सा

वाचक : गरज उठे नभ में भी
उत्तर दिशि में, मेघ गहन सावन

[मेघों की गर्जन ध्वनि]
मारवणी के नेत्रों से
बह चला नीर, तब उसकी ऐसी
देख अवस्था, सखि ने पूछा—

**पहली सखी** हे आलो, क्या अकस्मात् ही
तरुविच्छिन्न प्रियंगु-लता सी
खिन्न-मना हो उठी, कहो तो ?

**मारवणी** हे सखि, कैसे कहूँ, छिपाऊँ भी कैसे,
जो अभी स्वप्न मे
देखा चित्र काम-सा सुन्दर
भूल रहा है अब भी दृग मे,
रूप न उसका भुला पा रही।

**दूसरी सखी** अद्भुत है सखि, प्रियतम के
प्रत्यक्ष न दर्शन हुए तुम्हें हैं
फिर भी तुम हो उठी प्रेम मे पागल,
हम न समझ पाती हैं।

**मारवणी** इसमे कुछ आश्चर्य नही है।
जो जिसका जीवन है सखि
वह उसके तन-मन मे बसता है।

**दूसरी सखी** सखी, सत्य है—
सच्चा प्रेमी सिंधु-पार भी

चहल-पहल हो रही बिजलिया की
नभ मे, बादल-बादल मे,
झूल झूल उठता है गोरा गात
बिजलियो का कजरारे घन के
सुदृढ आलिंगन मे
हाय, मिलूगी मै कब प्रिय से
इसी तरह निज खोल कञ्चुकी बधन,
काजल आँज नयन मे।

[मूसलाधार वर्षा और झंझावात का निर्घोष]

यह पावस ऋतु, जो कर देती है
गिरि-शिखरो का प्रक्षालन
भरती सिंधु-सरोवर मे जल
नदियो को झकझोर डालती
इसमे एकाकी सोना भी
कितना भीषण ?—खाए जाता
अधकार यह, यह सूनापन !
दैव, न इस अबला को मारो
नही सताओ इस विरहन को
हे स्मर, मैं हा-हा खाती हूँ
हैं निर्लज्ज बिजलियाँ तो,
जो करती घातक असि-प्रहार हैं
मधुर-मधुर गरजो हे जलधर !

तुम ही कुछ करुणा उपजाओ
[कुररी पक्षियों की करुण ध्वनि]
घर के पीछे वाले वन में
रात-रात भर उड़ ये कुररी
पंख फड़फड़ाकर, करीब के वृक्षों में
रागि, करुण स्वरा में
है कुहुकातीं, नींद न आती
भारी-सी छाती पर धरती
सोया करती हूँ पर सजनी —
दूर देश है प्रिय का,
पर्वत और समुद्र खड़े हैं पथ में;
यदि दे देते पंख मुझे ये कुररी,
मैं उनसे मिल आती,
किंतु सोचती हूँ फिर,
जिससे हो जाना अनिश्चित दैव ही
उसे पंख भी काम न आते,
होते हुए पंख भी, चकवी
नहीं रात्रि मे मिल पाती है।

धावक देख दशा यह मालवणी की
सखियाँ चिंतित हुईं, [illegible]
राजकुमारी का असाध्य है
इसका शीघ्र उपाय करो, है [illegible]

बोली उमा देवडी
जो थी सबसे अतरग सखि
राजकुमारी मारवणी की।

वाचिका रानो से भी हाल कहा
सब सखियो ने, राजा रानी ने
परामर्श कर, कई तेज
सांडनीसवारो को ढोला को
लाने भेजा नरवरगढ को
किंतु नही कोई भी लौटा
सन्देशो का उत्तर लेकर !
राजा रानी इसी सोच में
डूबे डूबे से रहते थे।

वाचक एक दिवस, आया घोडो का
एक बडा सौदागार, जिसके पास
लाख लाख के उत्तम
वायु-वेग-गामी घोडे थे,
राजा ने उसको आदर दे कर
अपने दरबार बुलाया,
मिलता रहा रोज राजा से
बडे प्रेम से वह सौदागर।

वाचिका एक दिवस, जब दोनो ही थे
राज भवन मे बैठे,

देखी अकस्मात् ही सौदागर ने
मारवणी की झलक
झरोखे की जाली में, स्तब्ध रह गया
देख अमित रूप की प्रतिमा !

चारण : यह सुवर्णवर्णी, अनुपम
लावण्यमयी छवि, अधर प्रवाल-से
कटि क्षीण सिंह-सी, दीर्घाक्षि
चंचल दृग मृगशावक से—
जैसे संध्या की बेला में
बादल में बिजली चमकी हो !

फिर सवाल से परिचय पा कर
और जान कर सारा ब्यौरा
सौदागर राजा से बोला

सौदागर : हे राजन् ! मैं चार मास तक
रहा प्रेम से नरवर गढ़ में
और अनेकों घोड़े बेचे ।
साल्हकुमार वीर है अनुपम,
सुन्दर है, दानी भी है,
नित लाख पसाव दान करता है !
मालव के राजा की कन्या
मालवणी उसकी अर्द्धांगिनि,
उसमें वह अनुरक्त बहुत है ।

ढोला मारु के मिलने मे
मालवणी ही वाघक है,
वह भेजे जाते दूत यहाँ से
उन सवको मरवा देती है !

वाचक सुन कर राजा स्तब्ध रह गया
सखियो संग पूजा करने
मंदिर जाती मारवणी ने भी
बात सुनी सब सौदागर की।

वाचिका बुला पुरोहित को, राजा ने
कहा कि ढोला को ले आओ
पर रानी ने सोचा, याचक
ठीक रहेंगे, जो कि कुशल हैं
भेद समझते हैं, नर्त्तन मे
गायन-वादन मे प्रवीण हैं
वही काम यह कर पाएँगे।

वाचक प्रकट किया वैसा ही रानी ने
मन का विचार राजा पर,
राजा ने ढाढी बुलवाए,
समझा सारी बात, दिए आदेश,
प्रलोभन पुरस्कार का
देने के पश्चात् विदा दी।

वाचिका  मारवणी ने भेज सखी को
फिर मांगे ढाढी बुलवाए,
रच-रच कर मांड रागों में
अपने सब सन्देश सुनाए—

मारवणी  जब तुम पथिक वेष में नरवर
पहुँचो, प्रियतम से यह कहना —
कहना... ...हे बचपन के साथी,
हे मेरे सपनों के राजा,
हे जीवन-धन, भूल गए क्या
इस दुखिया को ? चित्र हो गए
क्या शैशव-स्मृतियों के धुँधले !
शिथिल प्रेम के बन्ध हुए क्या ?
नहीं भेजते संदेशे तक !
कहो तुम्हीं, मैं कैसे जीऊँ ?
कैसे मन को धीर बँधाऊँ ?
मदोन्मत्त गज-सा यह यौवन
है मुझको झकझोर देता
तुम ही इसको वशीभूत, प्रिय,
निज अंकुश से कर सकते हो !
पलकें हुईं सीप-सी विकसित,
इनमें तुम्हीं, स्वाति हे मेरे
उमड़-उमड़ कर, बरस-बरस कर

शुभ मुक्ताफल भर सकते हो ! !
मुकुलित रूप-कमल मे अलि बन
क्यो न वन्त, करते रँगरलियाँ ?
बौरा उठा रूप का चम्पा,
क्यो न बीनते रस की कलियाँ ?
पुष्पित रूप-विटप-छाया मे
पथी क्यो विश्राम न पाते ?
गदराए रसाल-उपवन मे
प्रिय, वशी-स्वर क्यो न गुँजाते ?
उमडे हुए सरोवर-सा,
यह फूट चला है उन्मद यौवन
कब आकर डालोगे, हे प्रिय,
सबल भुजाओ के दृढ बँधन ?
तोड तटो को, रूप-काति का
लहराता है क्षीर-सरोवर
हे मेरे मन्मथ, कब इसके
रत्न निकालोगे मथन कर ?
कब तक मन बहलाए जाऊँ
मै विश्वासो के सम्बल से
क्षुधा-तृप्ति भोजन से होती
तृषा शमित होती है जल से
कहूँ कहाँ तक, कोई भी तो

मृदु रससिक्त पत्र पा-पा कर
अपने प्रिय ऋतुराज कत से
तुमने अपने निर्मोही का
किंतु एक भी पत्र न पाया
पर मेरा मन कहता है सखि
मात्र पत्र का तो कहना क्या
धैर्य तुम्हारा फल लाएगा

मारवणी नहीं नहीं, मैं भूल गई,
मैं अब न प्रेम-सदेश चाहती।
अब तो प्रिय-दर्शन से ही
मिट सकती पलको की व्याकुलता!
रोते-रोते क्षीण हो गई दृष्टि,
विरह के दिन गिन-गिन कर
ये मेरी घिस गई अँगुलियाँ
मैं न पत्र को पढ पाऊँगी!!
यदि अब भी आए न प्राणप्रिय,
सच कहती हूँ, फट जाएगा हृदय
और मैं मर जाऊँगी
ज्यो गिरकर कपोत का झूला
बिखर-बिखर जाता आँगन मे।

सखी नहीं, नहीं, ऐसी असगुन की
बात करो मत अपने मुँह से।



मरवण ...

हाय, स्त्रियाँ क्या मधुप लेतीं जन्म
यहाँ प्रश्न बन कर हो ?
क्यों वे इतनी विवश कि
निर्भर रहें पुरुष की निष्ठुरता पर
क्या न बदल सकती वे अपने
अश्रु कणों की मुसकानों में ?
क्या न यत्न का स्वत्व उन्हें भी ?
जब कि हृदय होता उनके भी
प्रिय अपना व्यक्तित्व उन्हें भी !

मारवणी: शुभ है सखि, मन्तव्य तुम्हारा
और उचित भी बुद्धिनिहित भी
मरणानन्तर निज स्वामी का
संग नहीं छूटे इसके हित
यदि हम क्षत्राणियाँ रचा सकतीं
जौहर, तो फिर क्या बाधा
करें यत्न यदि इस जीवन में ही
अपने पति को पाने का

सखि : मेरे मन की ही सखि, तुमने
बात कही है अपने मुख से

मारवणी : हे ढाढ़ी ! सब सुन चुकने पर भी
यदि उनका उर न पसीजे
तो तुम उन्हें अंत में कह देना
ऐसे संकोच त्याग कर—

मारवणी संदेश सुनाती
पैरों की अंगुलियाँ धरा पर
घूंघर रेखा-चित्र बनाती
रहती, कह कर बदल-बदल देती,
फिर बदल-बदल कहती है
पल-पल भ्रमित विराम रहती है
फिर भी मन की कही न जाती
पीर विरह की सही न जाती

गायक मारवणी से विदा माँग कर
ढाढ़ी पहुँचे नरवरगढ़ में,
गा-गा मधुर राग-रागिनियाँ
रिझा-रिझा पहरेदारों को
हो प्रविष्ट गढ़ में ढाढ़ी वे
महलों नीचे डेरे डाले,
और रात भर करुण स्वरों में
गाए सब संदेश प्रिया के,
जिनको सुन-सुन कर ढोला की
जाग उठी शैशव की स्मृतियाँ!

कविता पा कर सुधि की सुधा, प्यार ने
फिर से नूतन जीवन पाया
मदिर कामनाओं का उर में
एक नया सागर लहराया

लगा गूँजने कर्ण-कुहर मे
मधुर सुखद सन्देश प्रिया का
पल-पल बढने लगी हृदय मे
विरहजनित अतृप्त विकलता !

गायकदल को बुला सवेरे
उसने सारा विवरण सुनकर
विदा किया अति पुरस्कार दे,
रहने लगा प्रिया की स्मृति के
मिलन-उपायो के चिंतन मे
किंतु तभी मे खोया-खोया !

**वाचक** देख दशा उसकी, मन ही-मन
मालवणी भी हुई सशंकित
और एक दिन अवसर पाकर
उसने ढोला से यो पूछा—

**मालवणी** नाथ, आप क्यो इतने चिंतित
रहते हैं ? क्या इस दासी से
है कोई अपराध बना पडा ?

**ढोला** नही प्रिये, तुम परम गुणवती
यदि तुममे अभाव है कोई
तो वह केवल दोषो का है !

**मालवणी** तो फिर असमय ही स्वामी को

चिन्ताओं का कारण क्या है,
जान सकेगी क्या यह दासी ?
चिन्ता करना उचित नहीं है
चिन्ताएँ घुन-सी लग जातीं
जर्जर कर देतीं तन-मन को !
चिन्ता मानव के जीवन में
नाशकारिणी अग्नि चिता से
धीरे-धीरे धुँधुआती है
सुलग-सुलग कर जला डालती
जीवन, यौवन को, पौरुष को

ढोला सत्य कहा तुमने मृदु-भाषिणि
किंतु विवशता, यह चिन्ता ही
लौकिक कर्मजाल की प्रेरक
बँधा हुआ सारा जग इससे
इसको नहीं किसी ने बाँधा
जिसने भी बाँधा चिन्ता को,
है न मनुज, वह परम सिद्ध है !

हे मालवणी, तू है मेरे
हृदय-देश की चिर अधिवासिनि,
रोम-रोम में रमी हुई तू
हे हरिणाक्षी, यदि प्रसन्न हो
एक बार तू हँस कर कह दे

बहता शीतल पवन शांतिकर
अब न घाम तन को झुलसाए
स्वागत करती धरा, गलीचे हरे
नरम मखमली बिछाए
यदि आज्ञा हो, तो हे पद्मिनि,
अब यह जन पूगल को जाए—

मालवणी जिस ऋतु मे वर्षा के कारण
बक भी भू पर पैर न धरते
और पपीहे पीउ-पीउ है
सारी रात पुकारा करते
वस्त्र सील जाते हैं सारे
शस्त्र जग खाए हो जाते
कोकिल करती शब्द सुरगा
हैं मयूर वन-खण्ड गुँजाते

धारण करती वेप धरा नव
श्यामल सजल वर्ण हो जाते
रमणी के लावण्य अग है
गोरे हो जाते, गदराते

बाजरियाँ हरिया उठती है
बिच-बिच बेल फूल छवि पाते
गहमह होती ग्राम-गृहो मे
हैं किसान आनन्द मनात।

इस मधुमास-सुहावन छन में
तुम्हीं कहो, मेरे मनभाते
सिवा चोर, चातक, झींगुर के
कौन छोड़ घर पैर बढ़ाते ?

ढोला  कुछ भी क्यों न कहो तुम भामिनि,
विचलित मुझको कर पाएगी
बात न कोई व्यंग्य विनय की
कब तक इस जग के आकर्षण
रख सकते हैं उसे बाँध कर
जिसके मन में जाग उठी है
प्यास रूप की और प्रणय की
कब तक सहला सकती उसको
मन की ये पागल मनुहारें !
प्यास धरा की पावस की
रसधारा में ही बुझ सकती है
कब तक उसको सहला सकतीं
शीतल सजल समीर-फुहारें ?

मालवणी  नहीं, नहीं, यों हृदय न तोड़ो
निष्ठुर, मेरा साथ न छोड़ो
सावन विरहन का वैरी
इसमें एकाकी रहा न जाता !
पा असहाय वियोगिनि को, स्मर
पावस की सेना ले आता

उमड-उमड चढ़ता बादल-दल
उमग-उमग रण मे मदमाता
बिजली की तलवार चला कर
बूँदो के खर-शर बरसाता।

बिन साजन की ढाल, विरहिणी का
साक्षात मरण हो जाता
पिच्छ-छत्र मे नही मयूरो का
नर्त्तन-उल्लास समाता
मेरे अगो मे भी, कसमस
करता यौवन, काम सताता!

पैरो मे पकिल रज लिपटी
विटपो मे लिपटीं वल्लरियाँ
इस सुन्दर सावन की ऋतु मे
पुरुषो से लिपटी सुन्दरियाँ

ऐसी पावस ऋतु में कैसे
धीर धराऊँगी मै मन को ?
ऐसी पावस ऋतु में कैसे
छोड सकूँगी मैं साजन को ?

पाचक मालवणी के कहने से,
फिर साल्ह रुक गया पावस ऋतु तक,
फिर जब बीत गया पावस भी
और आगमन हुआ शरद का,
ढोला ने जाने की आज्ञा माँगी,

तब बोली मालवणी—

मालवणी जिस ऋतु में पोड़ों तक को भी
रखा हो पानी टापर में
कौन त्याग कर निज तरुणी को
निकलेगा उस ऋतु में घर से ?

पक्की तिलों को पटने लगतीं
धारण करती गर्भ हरिणियाँ
जिनकी आशा सफल न होती
वे अति मन्द-भाग्य विरहिणियाँ !

सोती हैं खोपों में पक्षी
साँप बिलों से नहीं निकलते
ऐसी ऋतु में कौन निठुर है
छोड़ प्रिया को, घर से चलते ?

जबकि उतर आता उत्तर का पवन,
और पड़ता हो पाला
ऐसी ऋतु में सेव्य अग्नि या
तरुणी या मदिरा का प्याला !

दिन छोटे-छोटे हो जाते
लम्बी हो जाती हैं रातें
गरमा जाती है तरुणाई
मीठी हो जाती हैं बातें
ऐसी ऋतु में हे प्रिय, मुझको
नहीं स्नेह-सम्बल दोगे क्या ?

त्याग हिमाहत म्लान कमलिनी-सी
निष्ठुर, तुम चल दोगे क्या ?

**ढोला** माघ मास मे जब अग-जग को
मत्त बना देता अनग है
मेरे मन मे मारवणी से
मिलने की उठती उमग है !

मुझे न रोको, आज न वस मे
आज न मुझे रोक पाओगी
टकरा प्रलय-सिंधु से, अपनी
आशा-नौका, पछताओगी !

**वाचक** यो कह कर ढोला करता है
झटपट तैयारी चलने की
मालवणी विनती करती है
उसे नही है चलने देती
वाग पकड घोडे की मुग्धा
प्रिय से लिपट झूमती झब-झब
करुणा-कातर कण्ठ हो उठा
भर-भर आई आँखे डब-डब

**मालवणी** बार-बार 'जाऊँगा, जाऊँगा' कह कर
क्यो हृदय दुखाते ?
कसना आधी रात ऊँट पर जीन
मुझे तज कर निद्रा मे !

ढोला : खैर, तुम्हारी इच्छा है तो
तब तक और ठहर जाऊँगा
पर यह दृढ़ निश्चय अन्तिम है,
अब न बदल इसको पाऊँगा

वाचक : यों कह ढोला ने बुलवाया
रैबारी को और कहा यों—
सबसे बढ़िया ऊँट छाँट लो;
पर सोचा फिर, दूर देश है
उचित नहीं सेवक पर निर्भर होन
वाहन के चुनाव में
और गया, खुद ही जा कर
जो सर्वश्रेष्ठ था ऊँट, चुन लिया !

वाचिका : मालवणी को ज्ञात हुआ, तब
गई ऊँट के पास, विनय की
उससे थोड़ा लँगड़ाने की
ताकि न प्रिय प्रस्थान कर सकें !

बना ऊँट को भाई, उसने
दिया उसे आश्वासन, 'यदि
खुल गया भेद, वह उसे न दागे जाने,
दण्डित होने देगी।

वाचक : उसकी कातर वाणी को सुन

मान गया पशु भी, लँगड़ाया
हुक्म हुआ दागे जाने का
तब मालवाणी ने यह कह कर–
कहीं ऊँट भी उत्तम दागा
जाता है ? उसके पीहर में
दाग दिया करते गदहे को,

जब कि ऊँट रोगी हो जाता
एक गधा पकड़ा मँगवाया
बदले में उसको दगवाया

वाचिका : पर मालवणी की चतुराई
समझ गई ढोला की माता
यह अंतिम उपाय भी उसका
व्यर्थ हो गया, क्षीण हो गई
उसकी सारी आशाएँ, उसकी
चेष्टाएँ ध्वस्त हो गईं,
बैठ गई वह हतोत्साह हो,
औ निराश हो अपने मन में !

वाचक : आधी रात हुई, ढोला ने
सजा ऊँट को जीन कसी, फिर
पैरों में सोने के घुँघरू डाले,
और सवार हो गया !

घोर रात के सन्नाटे को
ऊँट गरज्-गन् गन गरजाया
[ऊँट के बरलाने की आवाज़]

ढोला : रानी, ढोला के तुम्हें हो प्रणाम स्वीकार !
जीऊँगे तो मिलेंगे, नरवर कोट जुहार !!

पाठक : कर जुहार नरवरगढ़ को,
कर रानी को जुहार, ढोला ने
पूगल को प्रस्थान कर दिया;
बिलख-बिलख कर रानी रोई !

मालवणी : हे सखि, घर को सूना करके
आज चल दिए प्रियतम मेरे
कण्ठ तले जल नहीं उतरता
नहीं हृदय में श्वास समाता !
चलो महल में, सखी, जहाँ पर
किया बसेरा था प्रियतम ने
छिपका होगा कोई मीठा बोल,
अभी भी उनका उसमें !

जब से प्रिय चल दिए सखी री,
झीनी-झीनी खेह उड़ रही
हृदयाकाश घिरा बादल से
आँखों से बरसात बरसती !!

चलते सजन सजन आँगन में :
छोड़ गए पद-चिह्न सलोने

जो कि हो रहे अंकित
मेरे हिय मे गहरे कूप-कुहर से !

नही जीन, खूँटी पर है सखि,
नही दीखते हैं जूते भी
नही सालते साजन उर मे
मुझको तो यह ठाँव सालता !

सखि : धैर्य धरो सखि, क्षुब्ध न हो यों
आओ तनिक टहल आएँ हम
उपवन में वापी के तट पर

मालवणी : नही, नही, तू व्यर्थ न मुझसे
ऐसी बातो का आग्रह कर
जब कि जलाशय के तट जाती
पालि काँपती शशि मुसकाता
हे सखि, जल भी लहरें ले-ले
मुझे सर्प-सा डँसने आता !!

अरे विधाता, क्यो मरुधर के
बीच न मुझे ववूल बनाया
स्पर्श-लाभ पाती मैं, पूगल जाते
प्रिय जब छड़ी काटते

क्यो न बनाया मुझको श्यामल
वदली, नभ में छायी रहती

जब प्रियतम थक जाते पथ में
मैं उन पर निज छाया करती !

रूठ गया वह है सखि,
मेरी बिन बाता का बुरा मान कर
त्याग गया प्रेमी, मधुप ने
शून्य कमल-सा मुझे जान कर !!
मुझ मुग्धा को ठग कर छलिया-
दूर दग धन दिए हमारे
हे सखि, तुम्हीं कहो, मैं कैसे जीऊँ,
किस के रहूँ सहारे ?

वाचक उधर तीव्र गति से दौड़ाता हुआ
ऊँट को, ढोला पहुँचा
बूँदो, चदरी, फिर पुष्कर का
मीठा निर्मल जल पीकर
आडावाला की घाटी को
पार किया, सतोष नही था
पर गति पर ढोला के मन में
थी न श्रांति उत्साही तन में
वह पथ पर बढता जाता था
स्वप्न-दुर्ग गढता जाता था

[ऊँट की एक रस चाल की लय पूर्ण आवाज आती रहती है। लिखित गीत के स्वर दूर से निकट आते और निकट से दूर जाते हुए सुनाई देते हैं]

## गीत

एक स्त्री कण्ठ अरे बतादे कोई मुझको,
कब मेरा प्रिय आएगा
कब तक हाय विधाता मुझको
इसी तरह तड़पाएगा—

फिर-फिर ऋतु आई पावस की
घिर-घिर कर घन आए
निशिदिन बरसी आखें अपलक
किंतु न साजन आए

क्या मेरा यह हृदय सदा यों
प्यासा ही रह जाएगा ?

शिशिर काल भी बीत गया है
दुख का अंत न आया
बीत गया हेमंत सुहाना
फिर भी कंत न आया
क्या यह मदमाता वसंत भी
यों ही सूना जाएगा ?

मद पी मलय पवन लहराया
भृंग हुए मतवाले
सरसों खिली, करील-कुञ्जों में
छलके मधु के प्याले
इस सुरंग फागुन ऋतु में कब
रसिया रास रचाएँगे ?

वाचक . किसी ग्राम-युवती में गुमघुर
विरह-गीत की इन कड़ियों ने
ढोला की आँखों में आगे
चित्रित कर दी वाट जोहती
मारवणी की मंजु मधुर छवि
प्यास मिलन की अधिक जगा दी

सपनों में डूबे ढोला ने
चाल ऊँट की अधिक बढ़ा दी !

ज्यों-ज्यों दिवस ढला जाता था
चाल बढ़ाता ही जाता था
मार सड़ासड़ छड़ी ऊँट को
वह दौड़ाता ही जाता था

वाचिका . अकस्मात् मिल गया मार्ग में
चारण एक उमर सूमर का
जिसने दे संकेत हाथ से
रोक लिया पथ में ढोला को
रुकने पर उससे यों बोला—

ऊमर सूमरा सुनो, सुनो, उत्साही राही !
मन में अतुलित लिए उमंगें
अपनी जिस प्रेयसि से मिलने
चले जा रहे तुम आतुर हो

वह तो है अब शिथिल-शरीरा
विगत यौवना, श्वेतकेशिनी
जराजर्जरा, गलितवेदिनी
व्यर्थ तुम्हारी यह उमग है
स्वप्न मधुर हो गया भग है !!

**वाचक** : सुन चारण के वचन, साल्ह के
चिंता व्याप गई तन-मन मे
चल-दल-सा उसका शकित मन
लगा सोचने, लौट चलें क्या ?
लौटें भी तो अब किस मुँह से ?

चला गया चारण तो कहकर
पर ढोला को असमजस मे—
छोड गया वह गोते खाते !

इतने मे आगया सामने से
वीसू चारण पूगल से
और किया शुभराज; जान कर
फिर ढोला के मन की चिंता
दूर किया सन्देह हृदय का
कर मारू की रूप-प्रशसा !

**वीसू चारण** : हे ढोला, तुम तो सुजान हो
जब बचपन मे ब्याह हुआ था
तुमसे मारू का तब तुम थे

तीन बरस में प्रौढ़ देह की
थी वह, यदि अब उसका यौवन
बीत गया तो फिर तुम कैसे
अब भी यौवनवत मानते हो ?

ढोला होती मुझको भी प्रतीति है,
बन्धु, तुम्हारे इन वचनों पर
मैं भी मन में यही सोचता।

बीठू चारण ऊमर सूमर के चारण ने
ईर्ष्यावश मिथ्या भाषण कर
किया प्रयत्न तुम्हें छलने का।
मारवणी अतीव रूपसि है
शब्द नहीं मिल पाते जिनसे
करूँ रूप-वर्णन मैं उसका।

ढोला तुम समर्थ हो, सरस्वती का
वरद हस्त तुम पर कृपालु है
कहो, कहो, संकोच त्याग कर
कैसी रूपाकृति मारू की ?

बीठू चारण रत्न-प्रसू शोभा की खनि
यह मारू देश सदा से ही है
जो भी जन्म यहाँ पर लेती
उनके दाँत धवल होते हैं,

वे कुररी शिशु-सी गौरांगी
कोमल कमनीया होती हैं,
होती हैं खञ्जन-शावक से
दृग वाली अनुपम सुन्दरियाँ !

फिर मारवणी का कहना क्या ?
वह तो सर्वश्रेष्ठ रमणी है !!

वह मृगपतिवदनी, मृगनयनी
जब मृगमद का तिलक लगाए
मृगरिपु-सी कटि को लचका कर
करती है दृगपात, कौन वह
जिसका मन न मुग्ध हो जाता ?

ढोला : हे चारण, कहना मनरञ्जन
किंतु असत्य वचन मत कहना
कहना अपनी आँखों देखी—

बीसू : मारू की शोभा अनिन्द्य है !
अधर उरोज और दृग उसके
मधु से मीठे हैं, मादक हैं,
हे ढोला, मारवणी ऐसी है
जैसे अंगूरलता हो !

चम्पकवर्णी कान्तिमती वह,
स्वर्णशलाका सदृश नासिका

वदनाभ उन्नत पीन उरोजयुग
वीणाविनिन्दित वाणी उसकी

यह मरुभूमि धन्य भूखण्ड है,
इसमें सुरभित फूल न खिलते
मारवणी की रूप-सुरभि से
यह सारा वनखण्ड महकता

ढोला तुम न काव्य-रचना करते हो
फूल सुगन्धित झरते हैं
कविराज, तुम्हारी मृदु वाणी से

पीथू : कचनार डाली-सी है
अति प्रतनु सुकोमल देह-यष्टिका
अपने आँचल को लहरा कर
जाती वह जब कभी पास से
लगता, ज्यों हो उड़ी जा रही
कली केवड़े की मदभीनी !

वह दाडिम के फूल सरीखी
प्रतिदिन पाती नवोन्मेष है,
शुक्लपक्ष के शशि-सी उसकी
वर्द्धमान हैं रूप-कलाएँ !

ढोला साधु, साधु, कविराज, धन्य है !
ग्रहण स्वर्ण मुद्राएँ शुभ्र हों,

अर्पित तुच्छ भेट, उपकृत हूँ ।

[स्वर्ण मुद्राओं की खनक]

**वाचक** चारण से ले विदा, ऊँट को
और अधिक गति से दौडाता
सभा-वाली की बेला मे
आ पहुचा ढोला पूगल मे,
वीसू ने पहले ही आ,
शुभ समाचार सब सुना दिए थे
राजा रानी हर्षमग्न थे
महलो मे आनद छा गया,
जैसे चद्रोदय होने पर
खिल-खिल पडती दसो दिशाएँ

**मारवणी** आज आ गए साजन वे ही
जिनकी थी मैं वाट जोहती
खाट खेलती, खभ नाचते
सखि, यह घर हँस-हँस पडता है

**वाचक** भोजन के उपरात, रात्रि मे
जब था सज्जित शयन कक्ष मे
ढोला सुख-शैया पर लेटा
चली महल को सखियो के सँग
प्रियतम से मिलने मारवणी—

घेर घुमेर घाघरा पहने
पैरों में धारण कर स्वर्णिम
पायल, अग अग में गहने
वर्ण-वर्ण के पहन स्वर्ण के
हीरक व माणिक मोतिन के,
छम छम छम छम चली नवोढ़ा
ज्यों मतंग चलता हो कजली- वन में
या नदि घन-मण्डल में

वाचिका रानियाँ लौट गईं ढोला के
पास भेज कर मारवणी को—
प्रिय ने की एकान्त क्षणा में
भेट प्रिया से हृदय खोल कर
मिली तड़प बिजली-सी मारू
ढोला श्यामल सजल-मेघ सा
आँखें चार हुई दोनों की,
होने लगी प्रेम की वर्षा

फिर की राग-रंग की अभिनय
क्रीडाएँ दोनों ने मिलकर
जब कि रात ढलने को आई,
करने लगे विनोद परस्पर

मारवणी हे सुजान, है धन्य आज की रात,
कहो कुछ बात नई सी—

कोई गूढ पहेली, गाथा
या गुणोक्ति या गीत अनूठा !

**ढोला** एक प्रश्न है मेरा तुमसे—
प्रिय वियोग में स्मृति-लीना ने
सारी रात बजाई वीणा
किंतु चद्र को देख गगन मे,
किस कारणवश उसे रख दिया ?

**मारवणी** वीणा के सगीत स्वरा म
चद्र हो गया तन्मय, उसके
रथ के मृग भी मुग्ध हो गए
करनी पडी बद वीणा तव
विरह-दग्ध उस वियोगिनी को
जिसे चाँदनी भी आतप से
कही प्रखरतर दाहमयी थी ।

**ढोला** पकड सुन्दरी को, चोरो ने
सब उतार डाले आभूषण
किंतु नही ली नकफूली,
हे सुमुखि, कहो तुम, किस विचार से ?

**मारवणी** अघर-रग से प्रतिबिम्बित हो
लाल हो रही थी नकफूली,
काजल की छाया से काली

चोरों ने समझा, गुच्छा है !

ढोला : प्रिय ने देखा, सिर धुनता है
दीपक तरुणी के हाथों में
छिपा हुआ उसके आंचल में
मुग्धे, कहो, यह किस विचार से ?

मारवणी : दीप पवन-भय से अञ्चल की
शरण गया, पर पीन पयोधर देखे,
तो सिर धुन पछताया—
मिले न क्यों दो हाथ उसे भी ?

ढोला : स्त्री का पति परदेस गया है,
अर्द्ध रात्रि में खींच रही है
यह प्रोषित-पतिका तन्वंगी
चित्र सर्प का किस विचार से ?

मारवणी : विरह-निशा काटे ना कटती
महादेव के कण्ठहार का
अंकित किया चित्र बाला ने
जिससे वह दीपक बुझ जाए !

वाचक : यों ढोला-मारवणी के दिन
बीते अति आनन्द-मोद से
फिर की व्यक्त साल्ह ने सहसा
एक दिवस जाने की इच्छा !

मारवणी के साथ, चिता मे
जलने को तैयार हो गया

**वाचक** तभी वहाँ पर एक कहीं से
जोगी आ निकला रमता-सा
सुन कर करुण विलप, देख कर
जलने को तत्पर ढोला को
जोगिन के आग्रह अनुनय से
जोगी ने अभिमन्त्रित जल से
मारवणी को जीवन पुन प्रदान कर दिय

**वाचिका** : सहसा वह यो उठ बैठी, ज्यो
अभी-अभी निद्रा त्यागी हो!

प्रमुदित हुआ हृदय ढोला का
मानो घोर अँधेरी निशि मे
शशि पूनो का उदित हुआ हो
उसी समय दम्पति ने अपने
सारे आभूषण उतार कर
जोगी-जोगिन को दे डाले

**वाचक** : सँभला दिया साल्ह ने फिर
सामान साथ वालो को अपना
सग विठा कर मारवणी को
नरवर गढ मे शीघ्र पहुँचने

पाकर यह संवाद चरों से—
जो कि लगे थे इसी घात में—
ऊमर-सूमर के चारण ने
इसी समय सर्वोत्तम अवसर
पीछा किया शीघ्र ढोला का
करहन-सह मरवारोहित का।

मारवणी  हे प्रिय, देखो, धूल उड़ रही
नभ में घोड़ों की टापों से
अंधाधुन्ध भगे आते हैं
घुड़सवार घोड़े दौड़ाते

[घोड़ों के भागने की आवाज़]

या तो भगे आ रहे हैं ये
अपने ही प्राणों के भय से
या पीछा कर रहे हमारा
कुछ अनिष्ट होने वाला है !

[कुछ देर ऊँट और घोड़ों के भागने की आवाज़ें आती रहती

ऊमर  ऐ ठाकुर, क्यों अलग चल रहे
आओ थोड़ा-सा सुस्ता लें
कर लो जीमन, साथ चलेंगे

हमको भी नरवर जाना है !

वाचक यों ऊमर ने कपटी मन से
रोक लिया ढोला-मारू को
पैर ऊँट का बाँध, सौंप कर
मुहरी उसकी मारवणी को
ढोला एक पेड की छाया मे
ऊमर के सग बैठ कर
पीने लगा मद्य के प्याले

वाचिका थी ऊमर के साथ,
एक मारू के ही पीहर की ढोल
कपट-चाल से, वह मारू को,
गा-गा कर सचेत करती है

ढोलन झन... झन....झन.. तन्त्री बजती है
ऊँट कर रहा दूर जुगाली
यों सुख से दिन खूब बिताओ
दैव बिताने भी यदि दे

इस निर्जन सुनसान स्थान मे
चढा कौन-सा तुम पर रग ?
तिय का हरण, मरण है प्रिय का,
त्यागो शीघ्र पराया सग !

हे नारी, तू वडो चतुर है,
छडा मार कर भगा ऊँट को
मुग्धा तनिक हृदय मे चेत
यदि तुझको है प्रिय से हेत

[ऊँट के मारे जाने, हडबडा कर उठने और गरजाने की आवाज]

ऊमर वहाँ चले तुम साल्ह, ऊँट को
अभी मँगाए देता हूँ मैं !

ढोला [दूर से आवाज आती है—]
मुझ छोड कर उसे आज तक
कोई भी न पकड पाया है

[कुछ देर तक ऊँट और घोडों के भागने की आवाजे आती है]

निकल गए जब दूर ऊँट के
साथ-साथ ढोला-मारवणी—
सावधान कर दिया साल्ह को
मारू ने सब भेद बता कर
शीघ्र ऊँट पर चढ कर दोनो
बैठ गए, उसको दौडाया—
पैर खोलने का भी उनको
नही ध्यान जल्दी मे आया।
पार किया आडावाला को,
पहुँचे नरवर की सीमा मे,

मिला एक चारण, जिसने
इस ओर सारह का ध्यान दिलाया—
खोल दिया फिर पैर ऊँट का,
और जोर से भाग चले वे।

**वाचिका** पीछा करते हुए उमर को
ज्ञात हुआ जब इस चारण से—
ऊँट बँधे पैरों से भी
है निकल गया कोसा हो आगे
वह निराश हो अपने मन मे
लौट गया ले मुँह अपना-सा

**वाचक** राजा रानी दोनों सकुशल
पहुच गए नरवर के गढ मे
दोनों ही भार्य्याओ के सग
रहने लगा सारह अति सुख से
दोनो हिल मिल कर रहती थी
कर-कर यो विनोद आपस मे—

**मारवणी** हे सुजान प्रिय, इस पृथ्वी पर,
है सारे ही देश मनोहर—
किंतु विधाता का सिरजा, यह
मारु देश बडा नीरस है
ऐसा देश जला दूँ, मिलता
जहाँ अतल कूओ मे जल है

अर्द्ध-निशा में ही कूओं पर
होने लगता कोलाहल है
कुंकुमवर्णी कामिनियों के हाथ
जहाँ जल खींच न पाते
जहाँ नीर के लिए स्त्रियों को
पुरुष रात्रि में तज कर जाते
मैं आजन्म कुमारी अच्छी,
बाबा, मारू में न ब्याहना
छाते-ढोते घड़े शीश पर
मेरा तो होगा निबाह ना
ऊँट कटारा, आकफोग हो
जहा कि छायादार पेड़ है—
उत्तम श्रेष्ठ दुधारू पशु बस,
जहाँ कि बकरी और भट है
बोज कँटीली भुरट घास के
जहाँ पेट की भूख बुझाते
अनावृष्टि, अतिवृष्टि, टिड्डियाँ,
जहाँ कभी शुभ दिवस न लाते
कम्बल ही है जहाँ ओढना
साठ पुरुष नीचे जल मिलता
भूमि जहाँ की बजर निर्जन,
पग-पग पीणा साँप निकलता !

धारवणी मारु देश सुहावन, मनभावन
मारु देशो मे बढ कर
मालव मे बढ कर, न धरा पर
है कोई भी देश असुन्दर

जल जाए वह देश, जहाँ
जल पर सैवार मँडराया रहता
काले वस्त्र पहनते घर-घर
शोक सदा ही छाया रहता।

जहाँ न पनिहारिने झुंड के
झुंड बाँध आती इठलाती
जहाँ न जल भरने वालो की
लय निश्रित मधुरिम ध्वनि आती
जो मारु मे पैदा होती
होती है वे शुभ्रहासिनी
कुररी-शावक सी गौरागी
खञ्जन-चल-नयनी विलासिनी

मारू के रजकण भी सुरतरु—
सुमनो के रजकण से सुन्दर
इसे सींचते गहरे रस के स्रोत
जो कि अमृत से बढ कर

युगल स्वर यों हिल-मिल सुख से रहती थी
वे दोना वनिताएँ—
ज्यो रसालतरु से लिपटी हो
दो माधवी लताएँ
थी अनुरक्त रसिक प्रियतम मे
यो दोना मुग्धाएँ—
एक सिंधु मे हो विलीन ज्यो
जैसे दो सरिताएँ—



# आभलदे



[पृष्ठभूमि से वन प्रान्तर की ध्वनियों के साथ मृदंग मुरली आदि वाद्यस्वरों में समूह गान के बोल उभरते हैं ]

समूह गान लागे रे लागे आबू घना लागे रे सुहावना

ऊँचे-ऊँचे शिखर अरावली, ऊँचा है गढ़गिरनार
ऊँची ऊँची आबू की टकरी, ऊँची है मेघमल्हार
लागे रे लागे

नौखण्ड बादल महल हैं, नौगज तोरणद्वार
नौचाका की रँगरावटी, नौलख तारों के हार
लागे रे लागे

हरे-हरे पात कदम्ब के, हरी-हरी चम्पे की डार
हरे हरे आबा-केतकी, हरी-हरी है कचनार
लागे रे लागे

मीठा मीठा मेघों का गाजना, मीठी है मोरो की पुकार
मीठा मीठा रसिया का रूठना, मीठी गोरी की मनुहार
लागे रे लागे

वांके जांके हैं रणवांकुरे, वांकी नखरालो है नार
वांके वांके कजरारे नेण हैं, वांकी है वरछी कटार
लागे रे लागे

वाचक था अति दुर्गम और भयावह
गिरि अरावली का वन प्रान्त
जिसमे पशु स्वच्छन्द विचरते
घातक हिंस्र और दुर्दान्त
गुंजित रहती थी घाटी
वन-पशुओ की चिंघाडा से
खूनी मुठभडो की खबरें
आती रोज पहाडा से

[पृष्ठभूमि मे सिहो की दहाड हाथियो की चिंघाड चिडियो का कलरव, नरो का चीत्कार झरनों के नाद आदि स्वर]

वाचिका एक दिवस भीषण वन शूकर
ले कर वाराही का सग
करने लगा केलि सरवर मे
मन मे थी अति प्रवल उमग

वाचक कर आलोडन और विलाडन
जल को गँदला किया खँगाल
नाहर इक आया जल पीने
गरज उठा हो कर बेहाल

सिंह : ओ रे कन्दमूल-आरोगी
कर्दमभोजी, पामर नीच !
कैसे साहस हुआ कि तूने ,
फैलाया यह कादा-कीच !
शूकर : ओ छल-घाती पशु-हत्यारे
आया तेरे सिर पर काल !
तेरे परदादाओं ने ही
खुदवाया था क्या यह ताल ?
शूकरी : रोक नाहरी तेरे पति को
फरकाए न मूंछ का बाल
मेरा एकलदन्त काल है
इसकी दाढ़ें हैं विकराल
नाहरी : अरी शूकरी अब चुप भी रह
कर अपने सुहाग का ध्यान
पड़ा एक भी अगर दुहत्थड़
तेरा पति तज देगा प्राण
शूकरी : दे न निमंत्रण मृत्यु को
मेरा पति बलवन्त
इसने एकल डाढ़ से
उलट दिए गजदन्त
नाहरी : मेरा रणबंका सोनेरी
जब रण ठानेगा घमसान

तेरा भैंसा-खुर भागेगा
लेकर अपने पापी प्राण

शूकरी . आज तपोबल से जागा है
भाग्य किसी योगी यति का
बाघाम्बर का आसन होगा
व्याघ्रचर्म तेरे पति का

नाहरी किसी रावले मे लगता है
होने वाली है ज्योणार
तेरे पति का मास रांध कर
गोठ जिमाएँगे सरदार

शूकर · दूर हटो तुम, हम दोनो को
रण अब निर्भय करने दो

नाहर कौन अधिक बलशाली हम मे
अन्तिम निर्णय करने दो !

[पृष्ठभूमि मे नाहर-शूकर भिड़न्त सूचक ध्वनियाँ]

वाचक : नाहर से वराह टकराया
गूँज उठी चिंघाड-दहाड
पहरो तक मुठभेडे माची
गूँज उठे उत्तु ग पहाड

वाचिका जूझ रहे थे दोनो जोधा
लगा दाँव पर अपने प्राण

थक कर चूर हुए दोनों ही
नख से शिख तक लहूलुहान

वाचक : तभी पलट दुर्दम वराह ने
प्रबल स्फूर्ति से वार किया
खड्ग-धार सी तीक्ष्ण डाढ से
व्याघ्र-वक्ष को चीर दिया
गर्जन से वन-प्रान्त कँपाता
नाहर हुआ धराशायी
पर वराह के लिए विजय भी
नहीं हो सकी वरदायी

वाचिका : लँगडाता वराह जा पहुँचा
प्यास बुझाने पनघट पर
पनिहारिनें हुईं आतंकित
हुई गांव में तुरत खबर

[पृष्ठभूमि मे कोलाहल, आश्चर्य-भय मिश्रित स्त्री-स्वर, दौड़ते-भागते हाँफते हाँसते घोड़ों की टापें और कई आवाजें—अर खोड़ो सूर आगियो, जबरो है डाढ़ाळो, आंटीलो है असल एकदन्त, भागो, हाका करो, जाण नी पावे यो पळट्यो, घेरल्यो, मारल्यो, मारल्यो, इत्यादि। अन्त में हांफते हुए शूकर के दारुण आर्तनाद और घोड़ों के हिनहिनाने के बीच हर्षोन्मत्त आवाजें मारा गिरायो सा, वाहरे वाह खींवजी, धन है थनें थारें पोरस ने, वाहरे जगवाल्हा खींवजी वाहरे वाह .........]

याचक : जिसने भाले से वराह का
पलक झपकते किया शिकार
सींवसिंह गढ चोटाला का
था वह बालेचा सरदार
आते समय मार्ग मे उसने
मार लिया नन्हा खरगोश
भाभी के आगे रख बोला
भरा हुआ था मन में जोश—

सींवसी · देखो तो भाभी, रघनहित,
लाया हूँ कैसी सौगात ?
कैसी नरम रुँआली इसकी
कैसा इसका कोमल गात !

भाभी यह नन्ही सी जान विचारी
है इसका तो व्यर्थ शिकार
कैसा तो इसको सराहना
क्या तो करना इसे दुलार ?

सींवसी : देखो तो कैसी रेशम-सी
कोमल-कोमल इसकी खाल

भाभी : दूर हटाओ, मै न छुऊँगी
यह तो है जी का जजाल !

सींवसी : जीव विचारा यह नन्हा-सा
क्यों इस पर यह कोप कराल

उसे देखने ही भाभी सा
हाल तुम्हारा क्यों बेहाल ?

भाभी कई सस्से री खालडो कई सस्से री वाळ ।
आभळ तणै बिछावणै सटक्यो आखी साल ॥

खींवसी कहना फिर, क्या कहा अभी जो,
किसके गात चुभा शश केश
किसे साल भर इस पीडा से
पडा भुगतना दारुण क्लेश ?

भाभी मेरी बहना आभल दे के
शश का एक गडा था बाल
रूपवती बाला वह अबला
रही साल भर तक बेहाल ।

खींवसी हह, बस रहने भी दो भाभी
बहुत हो चुका रूप-बखान
होगी तुम-सी, एक खान से
निकली दो मणियों के मान

भाभी ( हास्य ) क्या होगा उपहास किये से ।
है अनिन्द्य आभल का रूप
बदली के भीने घूंघट में
ज्यों चन्दा का झलका रूप
जैसे नभ मे बिजुरी चमके
प्याले मे मद छलका रूप

टूटी मधुर-मिलन की लड़ियाँ
आया अकस्मात् व्यवधान

वाचिका : बहने लगी प्रबल पुरवाई
घिर आए बादल घनघोर
आभल को बरबस अनचाहे
पड़ा लौटना घर की ओर

[पवन की सनसनाहट, केकी-रव, मेघ-गर्जन तड़ित-तर्जन, कुछ स्त्री-स्वरों—'मेंह मंडग्यो, बाईसा घरां पधारो' 'ईंदर जोरां गाजे' अरे बहली ल्याओ' 'चालो तावळ करो' के साथ ही रथ-चालन और बैलों की घंटियों की टन-टन क्रमश: तीव्र से मन्द होती विलीन हो जाती है।]

वाचक : आभल पहुँच गई महलों में
पर उर में उमगी अति प्रीत
उसके अनुरागी अधरों पर
मचल उठा आकुल संगीत

गीत

आभल : आली री, जाने, कौन मेरा चितचोर।
अमराई में कोइल कूके, सिखर टहूके मोर
पाँसुरिया में पीर जगाये बाँसुरिया के पोर
आली री जाने... ...
पल-दो-पल की झलक दिखाकर, रस की उठा हिलोर
चाँद हुआ क्यों मुझसे ओझल, उलझे नयन-चकोर
आली री जाने... ...

हिये लगाऊँ, तपन बुझाऊँ बाँधूं, प्रीत की डोर
पलकों मे पिव आँज के राखूँ, ज्यूँ काजल की कोर
आली री जाने........

नाँव न जानूँ गाँव न जानूँ कहाँ छुपा किस ओर
मीराँ का वह गिरधर है तो राधा का नन्दकिशोर
आली री जाने... ....

वाचक · सननसननसन चले पवन
बरसे धारासार सघन
मेघ करे भीषण गर्जन
तडित करे ताडन-तर्जन
प्लावित जल-थल और गगन
घिरा आ-रहा तिमिर गहन
लेकर कम्पित मीणा तन
प्रिया-मिलन की लिए लगन
दिया उधर वालेचा चल
था आभल का जिधर महल
बजते जाड-दाँत भीचे
स्मृति-सुख-थकित नयन मीचे
घोड़े की लगाम खीचे
खडा हुआ छाजे नीचे

वाचिका किन्तु खीवसी के सिर-पर
टूट रहा था वन निर्झर

छत का भारी परनाला
जिसने उसे भिगो डाला
पर उपाय सूझा पल मे
पाग बाँध कर कुन्तल मे
परनाले को तोप दिया
बहता पानी रोक दिया
डूब गयी छत पानी मे
आभल थी हैरानी मे
उसने झुक नीचे देखा
चमकी तभी तड़ित्-लेखा
दोनो के मिल-गये नयन
चाहो के खिल गये सुमन
दोनो को आल्हाद हुआ
यो सुखकर सवाद हुआ—

आभल · परनाळा पाणी पडै, घर-अम्बर इकधार।
कौण गढा रा राजवी, कुण छो राजकुमार ॥

खींवसी · पितु म्हारो परताप सी, गढ चोटाळो गाम।
आभळ निरखण आवियो, खींव हमारो नाम ॥

आभल अभी लीजिए, मै पलग की
लटका देती हू नीवार
पलक पावडे बिछे हुए है
खुले हुए स्वागत मे द्वार

[घोड़े को खिड़की की ताड़ी से बाधने और निवार के सहारे खींवजी के ऊपर चढ़ने की ध्वनियाँ]

स्वागत है पाहुन, पधारिए,<br>
सपना आज हुआ साकार<br>
किन्तु यही सकोच सालता<br>
करूं आपकी क्या मनवार ?

खींवसी . दे दुर्लभ एकान्त मिलन-सुख<br>
प्रिये किया मुझ पर उपकार<br>
मै न तुम्हे कुछ भी दे पाया<br>
व्याकुल करता यही विचार

आभल . *मैने तो पा लिया सभी कुछ*<br>
आप सरीखा पा सरदार

खींवसी · हुए आज से एक-प्राण हम<br>
यही हमारा कौल-करार<br>
अच्छा, विदा, मुझे चलने दो .<br>
थमी अभी वर्षा की धार

आभल : यही बिताते रात आज की<br>
कर लेते श्रम का परिहार

खींवसी . अब तो ले बारात साथ में<br>
आऊँगा इस घर के द्वार<br>
भरी सभा के बीच प्रिया को<br>
ले जाऊँगा तोरण मार

[पृष्ठभूमि मे रस्सी के सहारे छत से उतरने तथा घोड़े पर सवार हो प्रस्थान करने की ध्वनिया]

आभल सा पिया का मिना सहज ही
किन्तु शीघ्र ही छूट गया
जैसे कोई मीठा सपना
आते आते टूट गया
आधा सच आधा सपना-सा
था यह मधुर मिलन अपना
राम करे अब सच हो जाए
शेष रहा आधा सपना !

दृश्यान्तर, सगीत विराम]

वाचक खीवंसिह घोडा दौडाता
जा पहुँचा गढ चोटाळा
गिन गिन कर दिन लगी काटने
वह उन्मन विरहन वाला

वाचिका तीव्र विरह-ज्वर ने आभल को
जब मृतप्राय किया
प्रेमी से मिलने का उसने
एक उपाय किया

वाचक किसी देवता के प्रभाव का
सहज छनाव किया
पीर रामसा की छाया है

[दासी का प्रस्थान]

देवर मुझे लिए बिन जा पाओगी
मत इस धोखे मे रहना !

भाभी ब्याई सगो मे क्वारपने मे
है मिलने की रीति नही
काम समझदारी से लो तुम
अच्छी अधिक अनीति नही

देवर मिले बिना मैं रह न सकूँगा
है भाभी यह सत्यकथन
चाहे कुछ भी करो, तुम्हें पर
रखना होगा मेरा मन

भाभी (हँस कर)
अच्छा देवर, सूझ रहा है
मुझको केवल एक जतन
यदि तुम नारी वेष बना लो
हो सकता है तभी मिलन

देवर वाह, भाभी तुम कितनी अच्छी
सूझ बूझ क्या पाई है !
कहा तुम्हारा करने म कब
मैंने देर लगाई है ?

[स्वल्प सगीत विराम]

वाचिका : भाभी सँग चल पड़े खींव सी
घर नारी का वेप
आभल के डेरे जा पहुंचे
छल से किया प्रवेश
गले मिले सब अति उमग से
मिटा मनों का खेद
नारी की कृत्रिम सज्जा ने
खोल दिया सब भेद

वाचक भरड़क भागा खोपरा, चरड़क फाटो चीर।
आभल खिव भेळा हुया, नयां खळक्यो नीर

आभल जोजी आज आपसे मिल कर
माती नही उमग
कौन सुघड़ यह नार, आपके
जो आई है सग ?

भाभी कुछ दिन को मिलने आई है
ये मेरी नणदल
इनकी अपने सासरिये को
है रवानगी कल

आभल : तव तो इनको यही छोड़ दें
आप आज की रात
फिर जाने कव मिलना होगा
कर लें जी की वात

म्हारी प्यार, मुग की वाग, खींवसो था लो, पौ फाटीजगी जावा द्यो म्हारो नार आभल हीयो फाटीजग्यो, फेरू मिलाला भरतार, स्वल्प सगीत विराम, घोडे के टापो की तीव्र से मद विलीन होती ध्वनि।]

वाचक रामदेवरे पहुँची आभल
भक्तिभाव से नमन किया
चढा मनौती, दान पुण्य कर
फिर आबू को गमन किया
आभल की रक्षा का मन मे
लेकर अटल विचार
सग चल रहा था तुरंग पर
खींवसिह सरदार

वाचिका जब आबू कुछ दूर रह गया
देख भली सी ठाव
डाल दिया सारे दल बल ने
उस दिन वही पडाव

वाचक खोल दिया बैलो को रथ से
घोडो की दी जीन उतार
चूल्हे सुलगे, देग चढ गये
भोजन होने लगा तयार

[घोडो के हिनहिनाने, लकडियां फाडी जाने इत्यादि डेरे की हल चल सूचक ध्वनियां]

वाचिका नीचे बिछी सुरगी जाजम
ऊपर नभ का तना वितान
लेटा हारा थका खीवसी
मिटा रहा था तीव्र थकान

वाचक छोलदारियाँ तनी देख कर
तरह तरह का सुन कर शोर
मन-ही मन कुछ ले उधेड बुन
चारण आ निकला उस ओर

चारण हो रे, ये डेरे किसके हैं
है यह कौन बडा सरदार ?

खींवसी एक बटाऊ राजपूत है
आप कहाँ से रहे पधार ?

चारण साळू को है यहाँ कोटडी
झानाओ का है यह गाँव
चारण कुल मे जनम लिया है
हरिया है छोटा सा नाँव

खींवसी भले पधारे आप कवीसर
हो कृपया स्वागत स्वीकार
आज रात को यही विराजे
आरोगण भी है तैयार

एक मोहर यह नज़र ग्रापकी (मोहर देता है)
है न यहाँ ग्रपना घर-बार
इस विदेस मे ग्रौर ग्रापकी
कर सकते हम क्या मनवार ?

चारण किस कुल मे है जन्म ग्रापका
ग्रौर कहाँ रहवास ?

खीवसी कुल वाळेचा, नाँव खीवसो
कवीसरो का दास
रामदेवरे ढोक दिला कर
मन की पूर उमग
हम ग्राबू के लिए चले हैं,
आभलदे के सग

चारण ख्यातनाम गढ चोटाळा के
आप बड़े सरदार
सुनता था वैसा ही पाया
सूर ग्रौर दातार
सूळा भाला से परणी हैं
बहन ग्रापकी एक
ग्राप सरीखे सरदारो ने
बेटी दी क्या देख ?
इन भालो मे ना दातारी
ना राजपूती टेक

खींवसो होनी होकर ही रहती है
मिटे न विधि का लेख ।

चारण सदा सताता वाळेची को
सूला का उन्माद
सुना आज ही मैंने उनमें
एक विषम संवाद

[दृश्यान्तर स्वल्प संगीत विराम]

स्त्री-स्वर पीहर में मन लगा न मेरा
बिना तुम्हारे संग
आ भी जाओ कन्त सेज में
आज मनालें रंग ..

पुरुष-स्वर इतना ही था प्रेम, किया क्या
पीहर हेतु प्रवास ?

स्त्री-स्वर अब जाऊँगी नहीं, क्षमा हो,
है मेरी अरदास
मान करो मत

पुरुष स्वर मान गये लो,
आ बैठे हम पास....
.. अरे, तुम्हारे वस्त्रों में यह
किस मानुष की बास ?

स्त्री स्वर कहाँ बास है ? शपथ आपकी
भ्रम यह तो मचन !

पुरुष-स्वर व्यर्थ न झूठी शपथें खाओ
करो न हमसे छल
करो न तिरिया-चरित, बता दो
हम को सच-सच बात
कौन परपुरुष बसा हृदय में
हमको भी हो ज्ञात !
[म्यान से तलवार सूँतने की आवाज़]
वरना यह तलवार तुम्हारे
कर देगी दो टूक

स्त्री स्वर स्वामी, सच कहती हूँ, मुझसे
एक हो गयी चूक !
थे भाई को दिए एक दिन
ये वस्त्राभूषण
जिन्हें पहन कर आभलदे से
उसने किया मिलन

पुरुष स्वर परदाराहित चोरी-जारी
भाँडो-सा व्यवहार
इस बाळेची रजपूती को
हैं सौ-सौ धिक्कार !
मेरे हाथों उस जनखे का
होगा काम तमाम

ऐसे भाई की भगिनी से
रखना मुझे न काम !

[क्रोध मे पैर पटकने और कपाट बन्द करते हुए चले जाने के पद-चाप; सिसकते-सुबकते नारी स्वर]

चारण : कुँवर खीवसी, इन झालों के
ये हैं असली ढग
ये क्या जानें रीत-प्रीत की
क्या जानें रण-रग
क्या जानें गुणियो का करना
दान-मान-सम्मान
ये मूंजी, इनको पौरुष का
है झूठा अभिमान

खींवसी : जन्म-जन्म के संस्कारों का
जाता नही प्रभाव
जाएँ चाहे प्राण जोव के
जाता नही स्वभाव
जैसे जिसके कर्म और गुण
वैसे ही परिणाम
भोजन जीमें करें आप अब
शयन और विश्राम

[दृश्यान्तर; स्वल्प सगीत-विराम]

खींवसी  ग्राभल-- ।

ग्राभलदे  जी,

खींवसी · कुछ सुना ?

ग्राभलदे  सभी कुछ सुना, हुग्रा सब ज्ञात

खींवसी  होना है कुछ ग्रघट, कह रहे
ये सारे हालात

ग्राभल  नही कवीसर पचा सकेंगे
कभी पेट मे वात
खेल सिर-कटी का होना है
होना है उत्पात

खींवसी  ग्राज कसौटी पर है ग्रपना
धर्म-कर्म-व्रत नेम

ग्राभल  जिएँ-मरेंगे साथ, हमारा
ग्रमर रहेगा प्रेम

खींवसी  शायद ग्रन्तिम हो यह ग्रपनी
ग्राज मिलन की रात
कल का रक्तिम प्रात न-जाने
लाए क्या सौगात !

[पृष्ठभूमि मे रात्रिकालीन ध्वनियां, खुर्राटो के बीच पहरेदारों की पद-चाप ग्रौर 'खबरदार, होशियार, जागते रहो !' की मदतर होती ग्रावाजें

करुण सगीत, जलपडुकियो के कल-स्वर, विराम फिर भैरवो के मद कोमल स्वर उभरते हैं, चक्की के घर्राटों और कुए पर कोली बारिया के बोलों के बीच मुर्गे की बाग सुनाई पडती है, चारण का कसमसाते अगों से अगडाई तोडते और जमुहाइया लेते हुए उठ-खडा होना]

चारण *किरण उगाळो की बेला है*
होने वाली जाग
खीवसिंह ने को मिजमानो
धन है मेरे भाग !
झालाओ मे कितना पानो
यही देखना आज
चलूं, आग रण की चेताऊं
करूं मरण का साज !!

[चारण की मद से तीव्र होती पद-धापें और फिर भागने हाफने की आवाजें, खिड़कियों के खुलने और काई है सवार सवार आ कांई वला ? भैरव है क वजराग, जैसे औत्सुक्य वाक्यो के बीच चोराहे से चारण की ललकार फूटती है]

चारण *फिट झाला धिन वाळेचा*
फिट मूंजी, धिन दातार
फिट नाहर रे धिन डाढाळो
फिट कायर धिन जूंभार !
फिट सूळा धिन खीवसी

जिसकी जग मे धाक
घुस झालो की माँद मे
काटी उनकी नाक

साळू फिट वाळेचा रे धिन झाला
धिन झालो का भाग
कौन हाथ देकर बाँबी मे
छेड़े सोया नाग ?

[नगाड़े और भेरी-ध्वनि के साथ ही घोड़ों के हिनहिनाने और जीन डाले जाने की ध्वनियों के बीच मारलो, काट लो, हर हर महादेव, जय चामुण्डा इत्यादि युद्ध घोष सुनायी पड़ते है। घोड़ों की भाग दौड़, खड्गों की टकराहटें और तुमुल युद्ध-कोलाहल के स्वर, 'जाने न पाये ये वाळेचा' 'बचे नहीं झालो का बीज' जैसी ओजस्वी ललकारें गूंजती हैं]

साळू लाज गवाई वश की, हुआ पुरुष से नार।
घारण करना व्यर्थ अव, इन हाथो तलवार॥

खींवसी साळू डीग न हाँक तू, सँग मे दल-बल देख॥
झाला सौ कट कट गिरें, तब वाळेचा एक॥

[युद्ध ध्वनिया पुन उभर कर मद होती है, करुण सगीत-स्वर, खींवसी का मर्माहत हो कराहते हुये युद्ध भूमि में गिरना]

खींवसी आभल, प्रिय, मै तो चला...
चढ कर दिव्य विमान..

आभल : कन्त, चल रही साथ में
मैं भी तज कर प्राण !

[खींवसी के शव से लिपट कर बिलखते स्वरों में]

तेरो मेरो है अमर, जन्म-जन्म की चाह
कैसे अनब्याहा कहूँ, तू मन-चाहा नाह
गँठ-जोड़ा है प्रीत का, नभ-चँवरी की छाँह
अंगारों की सेज पर, आज रचेगा ब्याह

वाचक-वाचिका :

मन री मन ही मांह, ख्यात करे मिलिया महो
मिल्या मसाणा मांह खीरां आभल खींवसी ॥



# नागवन्ती



[पृष्ठभूमि मे अकाल सूचक ध्वनियाँ और स्वर उभरते हैं, लू और झक्कड़, चीलों की चिलकारें गिद्धों की कर्कश चीखें, ऊँटों के गरळाने और कूम्रो की चड़ियाँ चलने तथा पानी खींचे जाने के बीच कुछ संवाद उभरते हैं— म्हारा माट नै क्यूँ हटायो ?, अरे, हटाओ ई डोबड नै, म्हे तो पाणी भरियो ई नीं घर घा चौपराण बीच मे ही रासो रोप दियो, डोल सू डोल क्यो टकरा रियो है रे रेवतिया ?, मैं काई करू सांवताजी घरां पाणी री छांट नी है, स्त्रियो के पानी के लिए झगड़ने की आवाजें, अरे, हाका मत करो, मोत्यां सू गो दूध अमोलो पाणी थारी राड़ ही राड़ मे खिडग्यो, गाया पाणी नै टाडै ऊ ट करळावै, गडकड़ा हांफै, या नै पाणी कठे सू पावा मिनखां नै ही पाणी इमरत हो गियो पाणी बिना खून तकात सूकग्यो ताळवा चिप गया, कुछ समवेत स्वर—काई करां सा ?, काळ पड गियो काळ, मिश्रित रौद्र करुण संगीत-स्वर उभर कर विलीन होते हैं। घूमते हुए हुक्के की गड़गड़ाहटों के बीच पुरुष संवाद—]

**धांवलदे बाला** क्यूं भई मरदो, कोई बादली
दीख रही क्या दूर गगन मे

छोटी-मोटी झड़ी लगेगी
आस रखें क्या अब भी मन में ?

पुरुष-स्वर एक : बिन बरसे आसाढ़ ढल गया
गिरी न एक बूंद सावन में
भादो की आठें भी बीती
मची खलबली है गोधन में

पुरुष-स्वर दो : नहा रही है चिड़ी धूल में
बरसे स्यात आज या कल में

पुरुष-स्वर तीन : सारे सगुन हो गये झूठे
अब क्या रक्खा है इस छल में ?

पुरुष-स्वर एक : कितनी बार बही है पुरवा
कितनी बार मेघ छाया है ?
पर क्या एक छींट भी बरसी ?

पुरुष-स्वर दो : ऊपर वाले की माया है !

पुरुष-स्वर तीन : ऐसा पाप किया क्या हमने
क्यूं प्रभु ने हमको तरसाया ?

पुरुष-स्वर एक : पशुओं पर भी दया न आयी
नहीं एक भी कण बरसाया !
डाँगर-ढोर रोज मरते हैं
फैल रही ऐसी महामारी

पुरुप-स्वर दो . मेरी राती ने दम तोडा
झोटी हुई राम को प्यारी

पुरुप-स्वर तीन · पेदे लगा कुम्रो का पानी
कही वास का वचा न तिनका
नही घरों मे अन्न वचा है
खाने भर को दिन-दो दिन का

पुरुप-स्वर एक पेट पीठ से सटे जा रहे
मुँह को है आ रहा कलेजा
कई घरो ने स्त्री बच्चों को
दूर दिसावर मे है भेजा

पुरुप-स्वर दो : धांवळदे जी, आप मौन क्यो
कहो, आपका क्या है कहना
यहाँ मौत के मुँह मे हमको
रामभरोसे कब तक रहना ?

धांवलदे : कहने-सुनने को अब क्या है
है आसार काल के साजे
पहली पड़वा जब भी गाजे
पूरा दीह वहत्तर वाजे

पुरुप-स्वर एक : दिवस वहत्तर किसने देखे ?
मौत खडी सिर पर मुँह बाये !

अच्छा हो कि पहुच जल्दी हम
अब तो महू मालवे जाएँ

धांदलदे   अब तो आस मेह की करना
कोरा अपने को छलना है
सीख वडो की यही कह रही
गाव छोड अब तो चलना है—

परभात गह डम्बरा दुप्पहरिया तपन्त।
रात्यू वाजै वायरा चेला करो गछन्त॥

पुरुष स्वर दो   तो धावळ जी मऊ मालवे
चलने की कब है तैयारी ?

धा लदे   मऊ मालवा आप पधारो
है पाटण की चाह हमारी
वहा जाखडो जी रहते हैं
जिनसे वालपण की यारी
गाढ वहुत है हेत हमारे
खूब करगे खातिरदारी
जो साडनी सँवार वहाँ से
आज सुवह ही वापस आया
उसके हाथ जाखडो जी ने
यही सँदेसा है कहलाया

पुरुष-स्वर   मेह पाणी है रगा-चगा
फसलें सारी हरी-भरी हैं
घुटने-घुटने घास उग रही
कन्धे तक बाजरी खडी है

धांवलदे   समाचार सब दिये मित्र ने
और अन्त मे यही कहा है
पथ मे पलक बिछाये है वह
बाट हमारी देख रहा है

पुरुष-स्वर एक   अच्छा जी, अब जिसका भी है
लिखा जहाँ का दाना-पानी
उसे वही तो जाना होगा
चलती आयी रीत पुरानी
हम चलते हैं मऊ-मलावे
आप उधर पहुँचे पाटण मे
फिर सुकाल हो, राम मिलाए,
यही साध है अब तो मन मे

समवेत स्वर   राम-राम जी
राम-राम.... ..
राम-राम सा - ...

[संगीत-विराम; फिर ऊंटों के दौड़ने, छड़ी मारे जाने और गरळाने की आवाज़ें; पक्षियों का कलरव; मंदिरों की शंख-घण्ट-निनाद आदि प्रात काल सूचक ध्वनियां; उल्लासपूर्ण वाद्यस्वर]

पुरुष स्वर : धांवळदे जी, चलते-चलते
आज आठवां दिन है हमको
कितनी दूर अभी पाटण है?

धावळदे : दूर कहां है, आ पहुंचे हैं
अब हम पाटण की सीमा में
पाटण आने ही वाला है........
देख रहे हो, ज्वार-बाजरी के
लहराते खेत खड़े हैं...
भरे हुए हैं जल से पोखर
[जल-पक्षियों के कल-स्वर]
हैं कर्मठ किसान पाटण के
खेतों की रखवाली करते
[गोफियों से पक्षियों को उड़ाने की आवाज़ें]
रूपगर्विता गुर्जर गोरी
हरी फसल के बीच खड़ी है
लाल ओढनी को लहराते
जैसे कोई वीरबधूटी,
छेड़ रही है मीठी तानें

जैसे ग्रामो मे कोयलडी

[स्त्री कण्ठ से गीत के बोल उभरते है ]

काळी काळी वादळी माँ बीजळी भबूके
मेघा करेछे घनघोर
डूंगरां माँ बोले छे मार]... ..

नागजी बापू . ग्रो बापू देखो तो
दूर क्षितिज मे दीख रहे है
स्वर्ण कलश मन्दिर-शिखरों के
फहराती हैं ध्वजा-पताका

धावळदे हाँ बेटा, हम ग्रा ही पहुँचे
पाटण के विख्यात नगर मे

पुरुष स्वर धावळ दे जी, एक बात है
छोरा यह नागजी बडा ही
खिलन्दरा है, मनमौजा है,
दूर देस म मित्रो के घर
दिला न द यह कही उलहना !

धावळदे इसकी भाभी बडी सयानी
इसको समभा कर रक्खेगी

भाभी मेरा यह ग्रांटीला देवर
कब मेरे वश मे रहता है ?

नागजी : बापू, पूछो तो भाभी से
इसका कहा कभी टाला है ?
फिर भी यह दिन-रात न जाने
मेरे पीछे पड़ी हुई क्यों,
मुझसे छेड़ किया करती है !

धांवळदे : अच्छा, चुप भी रहो, बस करो,
लो, वह आ ही गई सामने
वह छोटी-सी गठी मित्र की
देख लिया है उसने हमको
निकल पड़ा वह अगवानों को
चला आ रहा इसी सोध में

[ऊँटों को जहका कर बैठाये जाने, गरलाने, उन पर से उतरते स्त्री-पुरुषों की पदचापों और नूपुरों के स्वर, जाखड़ो जी और धांवळदे जी उमंग-पूर्वक परस्पर गले मिलते हैं]

जाखड़ो जी : लगा दिये दिन बहुत मित्रवर
बड़ी प्रतीक्षाएँ करवायी !

धावळदे : संग साथ को ले कर चलना
इतना सहल कहाँ होता है ?

जाखड़ो जी : यह क्या दशा बना ली अपनी
देह सुखा काँटा कर डाली
पशु भी सारे हैं बेदम से... ...

घांवळदे क्या अकाल की मार काल से
कम होती है, तुम्ही कहो तो !

जाखड़ो जी कोई बात नही है, पाटण मे
इन्द्र देव की बडी कृपा है
ताल-तलैया भरे लबालब
झूम रही फसलें खेतो मे
अच्छा हुआ आ गये हो तुम
रहो यहाँ सुख से, मुझको भी
मिला पुण्य से मित्र-लाभ है !
और बन्धु घांवळदे, यह तो
वही नागजी है छोटा-सा
जो कि गोद मे आने पर
था मूंछे मेरी खीचा करता

[दोनों हँसते हैं।

अब तो यह मुटियार हो गया
पूरा पाठा, आ तो बेटे. .
[कलाई मरोड़ कर जोर आजमाता है]
वाह बेटा जी, खूब कसरती बदन कमाया !

नागजी मैं क्या करता, कसरत के बिन
भाभी कब माखन देती थी ?
[सब हँसते हैं]

जाखड़ो जी : मैं भी कैसा हू, बातो मे
भूल गया, तुम थके हुए हो
पानी-पात तलक विसरांया
[नौकरों को आवाज]
हरला, रुघला ......
[दो पुरुष-स्वर . जी, हाज़िर हैं]
जाओ...इनको डेरे दे कर
करो सरवरा, खातिरदारी
कोई कसर नही रह जाए

[दो पुरुष-स्वर . अच्छा मालिक, अभी उठाया हुकुम आपका सर आँखों पर]

अच्छा भाई धाँवळ दे जी,
डेरो मे अब आप पधारें
जीम-चूंट आराम करे कुछ....
पुत्र नागजी, ले कर पशुधन
फिर तुम और तुम्हारी भाभी
बेटी नागमती के सँग-सँग
अपने खेतों को चल देना
हिलमिल रहना.......
और मित्रवर,
इधर जमेगी मजलिस अपनी !

[दृश्य परिवर्तन सूचक स्वल्प संगीत- फिर म गोपियों से पक्षिओं को उडाने की पुकारें, उडते हुए पक्षियों के स्वर, बलो की घटियों की टनन्नाहट रथ की रुन झुन इत्यादि ध्वनियाँ, निम्नलिखित गीत के स्वर उभरत है ]

गीत

स्त्री-कण्ठ चाँद खिला है सुहाना
सहेली, रास रमने को आना
बेला-चमेली का गजरा बनाना
जूडे म गजरा सजाना
सहेली रास रमने को आना

गोरे गोरे हाथो म महदी रचाना
अँखियन म कजरा लगाना
सहेली रास रमने को आना

माथे पे हिंगळू की बिंदिया रचाना
बिंदिया का दिप दिप जाना
सहेली रास रमने को आना

कँगना खनका के अँगना गुँजाना
अँगना म सजना रिझाना
सहेली, रास रमने को आना

[गीत के स्वर विलीन होते हैं खेत रखवालो और चरवाहों की आवाजों के बीच स्त्री पदचाप उभरते हैं।]

भाभी आज नागवन्ती बाई सा
गुजर गौरी के गीता की

सुनी मधुर मैंने स्वरलहरी
गुर्जर देश मनोहारी है
और यहाँ की कामिनियाँ तो
रम्भाओ से भी बढ कर हैं !

नागवन्ती . देस जागळ की छवि न्यारी
पूंगळ की पद्मिनियो का तो
रूप उजागर जगजाहिर है

भाभी . रूप आपके जैसा मैं तो
कहीं आज तक देख न पायी
ऐसा कौन पुरुष है जग मे
जो कि न रीझे इस मुखड़े पर ?

नागवन्ती करती हैं मसखरी आप तो
मुझको तो जागळ सुहाता
मर्द वहाँ के गर्वीले है
आँटीले हैं, रणबके है

भाभी : तो फिर यही मनाती हू मैं
वहीं मिले ससुराल आपको

नागवन्ती . बतलावण मे आप कुशल हैं
है कितना मिठास बातो मे
कभी सोचती हू इकन्त मे
थे मेरे कुछ भाग पुरबले
सग आपका मैंने पाया

लेकिन जब ख़्याल आता है
होते ही सुकाल, चल देगी
आप मुझे तज कर एकाकी
मै फिर कैसे रह पाऊँगी ?

भाभी : यह तो हेत आपका ही था
निकल गये दुर्दिन जीवन के
हमको आए यहाँ
महीने कई हो गये, पर लगता है
जैसे कल की बात अभी है !

नागवन्ती मधुर-मधुर सपने से ये दिन
गुजर जायँगे हाय एक दिन
जैसे पुरवाई का झोंका
अथवा सजल मेघ की छाया
रह जाएगी प्यासी-प्यासी
बस यादों की तपती धरती

भाभी · नही, नागवन्ती बाई सा,
हरी-भरी यह फसल ज्वार की
पक जाएगी झर जाएगी
खेती अपने नेह-प्यार की
नही कभी भी झर पाएगी
हरी-भरी ही सदा रहेगी

पर कहीं देवता से बढ कर है
नित्य स्नान कर जब वह चलता
तब उसके पावन चरणों से
पड़ती ऐसी ही पग-छापें

नागवन्ती  झूठ सरासर झूठ बात है !

भाभी  है इसमें कोई शक-शुबहा ?
हो जाए फिर शर्त कहो तो .

नागवन्ती  हाँ हो जाए   मैं राजी हूँ
तुम्हीं कहो क्या शर्त बदें हम ?

भाभी  शर्त यही है, तुम जीतो
तो कर देना कुछ भी जुर्माना
पर यदि मेरी जीत हुई तो
तुम्हें ब्याह फिर करना होगा
मेरे इस भोले देवर से
बोलो, है स्वीकार ?, कहो तो ..

नागवन्ती  हाँ सहर्ष स्वीकार मुझे है !

[अलगोजे के स्वर]

भाभी  लो, मेरा मनमौजी देवर
अलगोजे की तान छेड़ता
आप इधर ही चला आ रहा !
मैं जीतूँगी शर्त, देख लो
अब उसकी कुंकुम पग छापें

नागजी  शर्त कौन सी ? कैसी बातें ??
तुम दोनो ने क्या जाने यह
क्या तकरार मचा रक्खी है !

भाभी  कुछ भी तो तकरार नही है
हम दोनो मे शर्त हुई थी
ये कुंकुम की पगछापें हो
यदि मेरे प्यारे देवर की
तो सहर्ष नागवन्ती को
तुम से ब्याह रचाना होगा
जीत गयी मैं इसी शर्त मे
अब यह ब्याह रचाये तुम से
बस मेरी मनुहार यही है !

नागजी  गजब कर दिया तुमने भाभी,
ब्याह सनातन रीति जो कि है
जो संस्कार जन्म-जन्मो का
उसे दाँव पर यो लगा दिया !
जो कि शर्त यह हार गयी है
उस अबाध भोली आत्मा से
पूछ लिया होता इतना तो
सिर्फ शर्त ही हारी है वह
या कि हृदय भी हार गयी है !

कि इसके भरे हुए हुक्के को
पीने में कुछ मजा और है
स्वाद निराला ही आता है
उस हुक्के की सटकारों का !

धांवळदे : छोरा तो यह है खिलन्तरा और अनाड़ी
फिर भी बहुत पसन्द आपको
यह तो मायतपणा आपका

पुरुष एक : नहीं, नहीं सा, कहना होगा
छोरे में कुछ कसर नही है

पुरुष दो : मैंने भी देखा है उसको
खेती-पाती में खटते या गाय चराते
है पूरा कामेती, हिम्मत भी पूरी है

पुरुष एक : हिम्मत में तो सारे गुण हैं
हिम्मत के ही पाण कोट-गढ़ जीते जाते
कहणावत है--
हिम्मत किम्मत होय, विन हिम्मत किम्मत नहीं
कोड़ी न पूछे कोय, विन हिम्मत के राजिया

झाखड़ो जी : रुघला......ओ हरला......
(दो पुरुष-स्वर : हाजर सा)
अमळ तैयार हुआ कि नहीं
(पुरुष स्वर : तैयार कभी का)

तो ले आओ, देर किसलिए ?
(पुरुष-स्वर : अभी किया हाजिर अन्नदाता !)
[आतो-जातो पुरुष पगचाप]
लेओ सा, अम्मल हाजिर है
आरोगो, लो, रंग जमाओ !
अमळ कडा गुण मिट्ठडा ... ....

धावळदे रंग रामां, रंग लछमणा, रंग दशरथ रा कवराह।
भुज रावण रा भांगिया, आलीजा भवराह।

भाचड़ो जी रंग उदैपुर रा राणा नैं
रंग रूपनगर रा ठाणा नैं
रंग मंडोवर री वाडी नैं
रंग हाडा नैं अर हाडी नैं
रंग मल्लिनाथ सा ग्यानी नैं
रंग रूपादे राणी नैं

धावळदे रंग सीता सती नै
रंग लछमण जती नै
रंग सोनगरा री आन नै
रंग सायजादी री मीठी जबान नैं
रंग हम्मीर रा हठ नै
रंग सांगा रा सघट्ट नै

पुरुष-स्वर एक : जे कोई दातारगी करो तो
जगदेव पवार जिसी करज्यो

जे कोई घोड़ा दौड़ावो तो
वगड़ावता ज्यूं दौड़ाज्यो
जे कोई लुगाई आप ही वीद परणै
तो स्याहजादी ज्यूं परख र परणज्यो
अर जे कोई नार परणिया सूं मन फाडै तो
पन्ना वीरमदे ने कहियो ज्यूं वह दीज्यो ।

पुरुष-स्वर दो  रग मधुमालती नेह जिकण निभाया
रग सदैवच्छ सावलिगा जिका कदे नही बिलगाया
रग खीवा वाळा राण, आभल घर बैठा आई
रग ढोला रजपूत पदमणी मरवण पाई
रग छै पन्ना मिरगलोयणी, रग वीरम भो भाविया ।
लाखा फौजा मोड ने, आप घरा ले आविया ।।

[ध्वन्यन्तर स्त्री-पुरुष युग्म द्वारा चौपड़ खेले जाने, पासे फेंके जाने आदि ध्वनियाँ]

नागवन्ती  मेरी गोट किस तरह मारी ?

नागजी  पौ म मारी

नागवन्ती  पौ कब आई ?

नागजी  धौंवळ दे की कसम मुझे है
पड़े अभी तो हैं पौबारह !

नागवन्ती  आण भाखड़ा जो की मुझको
अगर पड़े हो पौबारह तो

रूँगट खाओ मती नागजी
रूँगटिये को राम फळेगा !

[दोनों म गोटियो के लिए खींचतान चूड़ियाँ खनकने कलाई मरोड़ने के साथ ही उई माँ की नारी चीख — मरोड़ दिया हाथ निरदयी ने ]

धावलदे ओह कौन है यह किसकी पुकार गूँजी है ?
अरे, नागजी और नागवन्ती की है ये ता आवाज
गजब हो गया !

[तेज कदमो से दौड़ने हाँफने और झालडो जी द्वारा पीछा किए जाने की आवाजें]

झालडो जी कहाँ चले यो धाँवळदे जी
आग तुम्ह है रोस किया तो
बच्चे हैं, नादान उमर है !

धाँवळदे मुझे न रोको आज दुष्ट को
मारे विना नही दम लूँगा !
मुझे क्या पता था कि कोख म
था यह विषधर नाग पल रहा
जिसने माँ का दूध लजाया !
ठहर दुष्ट तू अभी मजा मैं तुझे
चखाता हू शठता का !

[भाला फेंकने नागजी क मागने और माफ करो बापू तुमको म कसे समझाऊ कि ओह रामजी' कहने के साथ ही भाले के खंभे से टकराकर टूटने की आवाज]

जाखड़ो जी : धाँवळदे जी, यह क्या करने
आप चले थे ? सुनी राम ने
अच्छा हुआ कि सेल खम से जा टकरायी
है छोरे की जान बच गयी
वरना तो अनर्थ हो जाता !
बेल आप ही लिपट जाय तो
चम्पे का कुछ दोष नहीं है !
धाळा वाढे बेल, चपळे ने वाढे मती ।
चपळे वाह न सेळ, चपै बिळूंबी बेलडी ।।

[दृश्यान्तर; स्वल्प संगीत विराम]

नागजी : प्रिये नागवन्ती, क्या होगा,
अब यह अपनी बेल प्रीत की
कैसे मँडवे तक पहुँचेगी ?
इस जग के लोभी हाथों ने
इसके पथ पर बिछा दिये हैं
गर्म राख, जलते अंगारे !
सुना है कि ऊमर-भूमर से
ब्याह तुम्हारा शीघ्र रचेगा !
तिथि भी तय है ..........

नागवन्ती : तो क्या होगा ?

मैं तन से, मन से, प्राणों से
सदा तुम्हारी रहती आयी
और रहूंगी सदा तुम्हारी !

**नागजी** ये सब कहने की बातें है,
रहने भी दो, कहाँ सूमरा और कहाँ मैं ?
वह धनपति है, गढ़ाधीश है, !
मै साधारण सा किसान हू
जब आएँगे चीर रेशमी, पाट-पटम्बर,
सोने-चाँदी के बासन भी,
हीरक-मणि-माणिक के गहने,
वैभव की उस चकाचौंध में
भूल चुकोगी तुम ये बातें प्रीत-प्यार की
संग-संग जीने-मरने की
ये शपथें, ये कौल-वचन, सब धरे रहेंगे !

**नागवन्ती** नही नागजी,
मेरे प्राणाधार तुम्ही हो, तुम्ही रहोगे
जग की रीत सदा ऐसी है
मिलते है जो लोग, नही मन उनसे मिलता,
लोग नही वे मिलते, जिनसे मन मिलता है !
नागा, नगर गयाहं, मन मेळू मिलिया नही ।
मिलिया अवर घणाह, जा सूं दिल रळिया नही ॥

नागजी : क्या रक्खा है इन बातों में ?
छुरी-कटारी और नारियाँ,
मरने पर ये सदा परायी हो जाती है —
दाढी, नैण र दाँत, सिर ही साथै चालसी ।
छुरी, कटारी, नार, मूवां पर-घर माल्सी ॥

नागवन्ती : रहने भी दो, पुरुष सदा से ऐसे ही है
राख चिता की पत्नी की बुझने से पहले
दूजा ब्याह रचा लेते है !
ये तो सती नारियाँ ही हैं
जो युग-युग से अपने पति के साथ चिता में
जीवित प्राणो की आहुति देती आयी हैं !

नागजी : कौन वचन का सच्चा होगा,
सिर्फ समय ही सिद्ध करेगा !
अच्छा, विदा .....

[रूपान्तर, विवाह के मांगलिक वाद्य स्वर, नेगचार और पंडित द्वारा मंत्रोच्चार की ध्वनियां]

एक स्त्री-स्वर . बहना, चाहे कुछ भी कह लो
राग-रंग है, ठाट-बाट है सभी ब्याह के
किन्तु नहीं जंचती है आँखो मे यह जोड़ी
कहाँ नागवन्ती सोलह की
कहाँ साठ का ऊमर-सूमर ?

बूढे बरगद के मढ दी ज्यो
काची नागरबेल पान की !

दूसरा स्त्री-स्वर  बिसवा-बीस सही है बहना, बात तुम्हारी
यही बदा था हाय, भाग्य मे दुखियारी के
कन्या तो बछिया है जिसको डोर थमा दो,
साथ उसी के जाना होगा !

[पृष्ठभूमि मे हलचल, उतावली और अस्तव्यस्तता के बीच एक चुहिया की चिंचियाहट और जूतो से उसके पीटे जाने के स्वर]

स्त्री स्वर एक  अरे ब्याह के मगल-कारज मे यह चुहिया
जाने क्यो आ गयी कही से,
गँठजोडे की गाँठ कुतर, अपशकुन कर दिया !

स्त्री-स्वर दो  मार दिया बेचारी को निर्दय दूल्हे ने !!

स्त्री-स्वर तीन  हाय रामजी समर-भूमि मे
यह गयन्द किसने लुढकाया ?

पुरुष-स्वर  यह गौरव तो, सास,
(ऊमर)  आपके इसी जँवाई ने है पाया !

[स्त्रियों के सम्मिलित कलहास तथा पुरुषो के ठहाको के बीच दृश्यान्तर, तूफान झझावात के हहराते स्वरो के बीच मदिर मे शख घण्टिका वादन की मृदुमद ध्वनियों के अन तर पुन झझावाती स्वर उभरते हैं]

नागवन्ती  मौसम यह कितना तूफानी
कैसा रौद्र रूप प्रकृति का ?

··दसों दिशाओं मे है कम्पन
मत्त प्रभञ्जन गरज रहा है
मची हुई हलचल जल थल मे
सदियो जूने पेड उखड कर जडामूल से
हुए धराशायी जाते हैं .
· लेकिन यह तूफान कुछ नही
उस भीषण हलचल के आगे
मचल रही जो मेरे उर मे !
बस केवल सन्देह यही है—
अन्तरतम की इस हलचल के आघातो से
क्षुब्ध प्राण के उच्छ्वासी हाहाकारो से
अहंकार के, काम-क्रोध के और लोभ के
क्षुद्रबीज मे जडें रूढियो की फैला कर
उग आये हैं पेड़ रिवाजो के वन कर जो
मानव के निर्दोष रक्त से सिंचित हो कर
जन-जीवन मे ओर-छोर तक पसर गये हैं
ये दमघोंटू रीत-रस्म के झाड़ कँटीले
ये रिवाज् के पेड कभी क्या ढह पाएँगे ?
यह हहराती हवा बरजती मुझको—
पगली, मत इस पथ पर पैर वढा तू !
कई मिट गये हाँ, मिट गये,
किन्तु यह भो क्या सही नही है, अमर हो गये ?

मै भी मिट जाऊँगी प्रेमी से मिलने मे
पर मिट कर अमरत्व वरूँगी !
हाड-मास की इस काया की आहुति दे कर
मै अपने उस परम पुरुष का वरण करूँगी !
प्रकृति हू मैं शुद्ध-बुद्ध हू मूल प्रकृति मै
मेरा तत्त्व पुरुष है चिर चैतन्य नागजी !
किन्तु नागजी ? यहाँ कहाँ है ?? हाय नागजी !
क्या तू मदिर मे कर मेरी मौन प्रतीक्षा
रूठ गया रिझवार ? रूठ कर किधर चल दिया ?
तुझे कहाँ मैं ढूँढू ? मेरे सजण नागजी !
मेरी हर पुकार टकरा कर
लौट मुझी तक आ जाती है हाय करूँ क्या ?
चलूँ खेत मे स्यात् मुझे वह
अलगोजे पर तान छेडता वही मिलेगा !
[नूपुर स्वर गुञ्जित पद-चापें]
यहाँ खेत मे नही दिखाई देता है वह
वही रूठ कर, वह मचान पर
सो तो नही गया है, देखूँ, चलूँ, चढूँ मैं
[वृक्ष पर चढ़ने की ध्वनियाँ]
(हांफते हुए) अरे विना वादल-बरसा के
गरम गरम ये बूँदे कैसी सिर पर गिरती ?
कही रक्त की बूँदें तो ये नही ? हाय रे,

धड़क रहा दिल........

(मचान पर पहुंच नागजी की देह से पछेवड़ा परे करते हुए)

ओह, नागजी !
यह तूने क्या किया अरे मेरे अलबेले ?
तूने जो भी कहा, वही सच कर दिखलाया !
अलगोजे पर तान छेड़ता
ओ, मेरे ही अधरों का संगीत
कहाँ तू लीन हो गया ?
अब तो तेरी टेक लिए बिन
मेरी यह आधारहीन लय
तुझमें बिना समाये कैसे रह पाएगी ?

(अलगोजे को धोती में खोसते हुए)

ओ अलगोजे,
तू प्रिय सगी था मेरे जीवन-साथी का
तू ही था आधार, प्रीत के मधुर गीत का
मादक लय का
साथ तुझी को ले कर मैं प्रिय-मिलन करूँगी
तू ही मेरी टेक रखेगा।

(रक्तरंजित कटारी को देह से खींच कर)

अरी कटारी तू कुनारि है
तूने स्त्रीवाची हो कर भी
अमिट कलंक लगा डाला है त्रिया-जाति पर
अरी, शत्रु से लोहा लेने वाली है तू

आज उतर कर, ओ निर्लज्जा,
क्यों स्वामी की शत्रु हो गयी, लहू पी लिया ?
(कटार को परे फेंक कर सुबकते हुए)
तेरे-मेरे बीच वचन था साथ-साथ जीने-मरने का
क्या मैं उसको भूल सकी हू ?
सपने देखे थे जीते-जी
परिणय-मण्डप मे मिलने के
क्रूर काल ने, कुटिल जगत ने
तोड दिये वे सपने ...तो क्या ?
साथ-साथ परलोक-गमन कर
अपने सकल्पो-सपनो को पूर्ण करेगे !
ओ आँटीले,
जीवन की चौपड मे बाजी जीत गया तू !
मै भी अपनी गोट नही पर पिटने दूँगी
छूटेगी बराबरी पर ही अब यह बाजी !!
सजा लिए मैने सोलह शृगार मिलन के
आँज आज इन आँखो मे मृत्युञ्जय काजल
रचा पग-थली मे प्राणो का रक्त महावर
तेरे पग चिह्नो पर चल कर
मै भी आती हू तुझमे ही लय होने को !
(पछाड़ खा कर शव पर लुढक पडती है)

पुरुष-स्वर . काजळ जितरो भार, घाल नैंण मे ले चलो ।
आतम रो आधार, नेह निभागो नागजी ॥





मरवण ...

# मूमल



[मेह अंधियारी रात, घन-गर्जन, जल-वर्षण, विद्युत् तर्जन की ध्वनियाँ, पैकी-रव]

हमीर : (मंद-मंद गुनगुनाते हुए)

चाँद गयो घर आपणे, ऊजासडो कयाह ?
.... .. . ... (दोहराता है) ...
चाँद गयो घर आपणे ... कयाह ?
ऊजासडो कयाह ? चाँद गयो . ...
ओफ्फोह, है हद हो गयी !
अगली कडी आज दोहे की
सूझ नहीं पाती जाने क्यों ?
कभी नही होता था ऐसा
हो जाती पद-पूर्ति तुरत थी !
रूठ गयी क्यों जाने वाणी
जब कि रात मे रूप अलौकिक रीझ गया था !
रूप और वाणी मे वैर विरोध नही है
फिर क्यों अनबन ?

अनवन नहीं,
स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा दीख रही है !
वाणी कर पाई न अनुसरण
मृगलोचनि चौतालकी का रूप
कुलांचे भरता आगे निकल गया है !
उसकी मादकता से सम्मोहित वाणी ने
खो दी है अपनी सज्ञाएं ! !
नही भुला पाता मैं पिछली मेह-अँधेरी रात
कि जब वह सोढी कन्नरी
महेन्दरा की बहन
व्याहता नयी-नवेली मेरी पत्नी
घोडो को नीरने गयी थी घास
खुली थी अलि-अवली सी
आकुल अलके !
मृग-मद से मेहदी-चन्दन से चर्चित उसके अगो से
थी गमक रही यौवन की मादक गन्ध अनूठी !
खुली हुई झीनी-झीनी रेशमी कचुकी से
झरती थी भीनी-भीनी छटा
काम के गिरि-शिखरो से प्रतिछायित
स्मित चन्द्र-वदन की,
रूप-चन्द्रिका के बिम्बो के वृत्त बनाती !
ऐसी ही अनमोल अनिर्वच उन घड़ियो मे

फूट पड़ी थी कड़ी छन्द की सहसा मुख से—
चाँद गयो घर आपणे, ऊजासड़ो कयाह
किन्तु अधूरी ही रह जाती थी अर्द्धाली
दोहा पूरा होने में था नही आ रहा
[प्रात कालीन स्वर; मुर्गे की बाँग खग कलरव]
लो, सूरज की किरन फूटने वाली है
हो गया सवेरा ..
आने वाला है महेन्दरा
उससे पहले ही दोहे को पूरा कर लूँ
(अर्द्धाली पुन दोहराता है—)
चाँद गयो घर आपणे ऊजासड़ो कयाह !
कयाह, ऊजासड़ो कयाह ..
(महेन्दरा का प्रवेश)

महेन्दरा राम राम सा बहणोई जी
आज कर्ण के समय सवेरे
कयाह-कयाह क्या लगा रखो है ?
काव काव करने को तो
है कौओ की तादाद कम नही उमरकोट म !
(हँसता है)

हमीर सो तो देख रहा हू सम्मुख
उमरकोट का एक सयाना
प्यारा सा मिठबोला कौआ

आ पहुँचा सहायता करने
दोहे की अधजुडी कडी को पूरा करने
इस जाडेचा कौए की पुकार का सुन कर !
(दोनों हँसते हैं)

महेन्दरा तुर्की बन्तुर्की जवाब देने मे तो
कम नही आप है . फिर क्या दोहा रहा अधूरा ?

हमीर क्या जाने क्यो ? पहले ऐसा नही हुआ पर ..
कैसा जादू रात वहन कर गयी आपकी !

महेन्दरा . कहें समस्या

हमीर यह दाहे को है अर्द्धाली
(सस्वर पाठ करता है)
चांद गयो घर आपणे, ऊजासडा कयाह ।
पूरा इसे करे तब जानें

महेन्दरा इसमे क्या है ?
अभी समस्या पूर्ति लीजिए—(सस्वर पाठ—)
चांद गयो घर आपणे, ऊजासडो कयाह ।
कामण उळथे कचुकी, घोडा नोरे घाह ।।

हमीर वाह, वाह क्या कहने हैं, क्या शब्द जडे हैं
ज्यो मुँदरी मे मोती, ज्यो माला मे मनके !
काव्य रसिक तुम जैसा साला पा कर
मै तो धन्य हो गया, खूब छनेगी !

अभी तुम्हारी इस प्रतिभा का
परिचय दूंगा मैं सोढी को

महेन्दरा मेरी बहन सदा से परिचित है
मेरी इस कवि प्रतिभा से
फिर भी जब मैं रचता कुछ अच्छा सा,
वह प्रसन्न होती है
अभी भेजता हू मैं उसको।
(प्रस्थान)

हमीर (क्रुद्ध हुंकार छोड कर)
आने दो सोढी को मैं उससे पूछूंगा
ये कैसी हरकतें तुम्हारे इस भाई की ?
अपने आदरणीय जना की
रस रहस्य की बाता म यह काक दृष्टि क्यो ?
लो सोढी ही चली आ रही

(सोढी की पदचापें चूड़ियों की खनक एव नूपुर स्वर)

सोढी स्वामी सुबह सुबह दासी को
याद किया क्या ? अरे आपने
पहल तो बुलवाया, फिर मुंह फर लिय क्या ?
सुनिए न या रोष न करिए
कहिए भी तो

हमीर मैं कहता हू,
इस महन्दरा की कैसी बेहूद हरकत,

ये कैसी आदतें कमीनी ?
छुप-छुप कर झाँकना
बड़ो के गोपनीय एकान्त क्षणो में ?

**सोढ़ी** यह न कभी भी बात रही मेरे भाई की
ठीक नही है उस पर ऐसा दोष लगाना

**हमीर** तो फिर क्या यह समझूँ
उसके और तुम्हारे बीच कही कुछ
है ऐसा सम्बन्ध
जो कि आपत्तिजनक है ?

**सोढी** ओह बात बस है इतनी सी ?
समझ गयी मैं, क्यो डँस लिया आपको
या सन्देह नाग ने ? (हँसती है)
यह मेरा भाई महेन्दरा है ऐसा ही
इसम है अदृष्ट-कथन की ऐसी क्षमता
जो दुर्लभ है,

**हमीर** झूठ बात है !
यह सब छलना भरी चातुरी !!

**सोढी** (क्रोधपूर्वक)
मेरे शील और सत पर या आँच न लाएँ
दाग ढूँढने से पहले मेरे दामन में
मेरे भाई को लाछित करने से पहले

ले सकते हैं आप परीक्षा
उसकी इस अदृष्ट-शक्ति की !

**हमीर :** सो तो अब लेनी ही होगी
कल आखेट हेतु हम दोनों को जाना है
वही परीक्षा उसकी होगी !

[दृश्यान्तर; स्वल्प संगीत-विराम; वन-प्रान्तर की नैसर्गिक एवं घोड़े दौड़ाने, हाका करने आदि आखेट-सूचक ध्वनियां]

**हमीर :** ओह भयावह यह भीषण वन !
दूर निकल आया मैं इसमें
पीछे छूट गया महेन्दरा
हाँफ रहा होगा शिकार का पीछा करता !
और सोचता होगा....
मैं भी ठीक उसी की तरह इस समय
भाग रहा होऊँगा किसी शिकार के पीछे !
(हँसता है)
यह क्या पता उसे, ......
बेचारा स्वयं हो न जाए शिकार वह मेरे भीतर के
नर-पशु का
वह पशु ईर्ष्या का हो अथवा अविश्वास का !
पर इससे पहले मैं उसकी
ले लूँ कठिन परीक्षा...लेकिन दीखे भी तो

ऐसा कोई दृष्य अलौकिक जो अचिन्त्य हो
काव्य-समस्या-पूर्ति हेतु सार्थक प्रसग हो !

[वन मे आग लपने बाँसों के चटचटाने, पेडो के गिरने की आवाजें, पशु पक्षियो के आर्तनाद और करुण स्वर]

अरे कहाँ से आती ये दारुण चीत्कारें
वन पशुओ की चिघाडे मर्मान्त करुण स्वर ?
ओह सामने धधक रहा प्रचण्ड दावानल
लील रहा है वन को, बढा इधर ही आता !
ठीक सामने यह क्या ? एक भयकर विषधर
दावानल की लपटो से बचने को आतुर
हरे वृक्ष पर चढा, जहाँ पर एक मोर ने
खाना चाहा उसको, उसने तभी पलट कर
दिया पूँछ का एक लपेटा उस मयर के
कसी गयी ग्रीवा मयूर की ! दृष्य विषम यह
उपजाता मन मे दोहे की यह अर्द्धाली
सही विलग्गो नग्ग, तै तन कण्ठकलाप रे !
देखूँ कैसे इस अर्द्धाली की महेन्दरा पूर्ति करेगा ?
चलूँ लौट कर मिलूँ महेन्द्रा से जा कर मैं !
मुड चल मेरे अश्व, मुझे मिल गयी कसौटी
परखूँगा सोने को खरा है कि खोटा है !
[घोडे की तीव्रतर और फिर मन्दतर टापें]
लो महेन्दरा का पडाव यह दीख रहा है

शायद उसको कोई वडा शिकार मिल गया।
घोडे, तू भी है विचित्र, आ चला ठिकाने,
तब इस हरे वृक्ष मे मुँह क्यो मार रहा है–
वृक्ष खोखला जो भीतर से, पर बाहर से
दीख रहा है हरा-भरा जो, फूलो छायी
एक बेलडी क्यो कि वृक्ष पर चढी हुई है।
अरे मुझे तो
एक और मिल गयो पक्ति पद-पूर्ति हेतु है
धुड तो सूकोडाह, ऊपर फूल बहूकडा।
अब तो मेरे पास समस्या पूर्ति हेतु हैं
दो दो कठिन पक्तियाँ देखें यह महेन्दरा
कैसे कर पाएगा इनकी पूर्ति सहज ही
देखूँ भी क्षमता उसके अदृष्ट-कथन की।
[घोडों को हिनहिनाहटें]

महेन्दरा . आओ सा बहनोई जी,
स्वागत है, लेकिन
खाली हाथ आप हैं मैं यह देख रहा हूं,
क्या कोई भी है आखेट नही मिल पाया ?
मार लिया वन शूकर मैंने, भाग्य प्रबल थे।

हमीर वहुत वधाई, वहुत-वहुत है पुन वधाई।
भूल गया मैं तो शिकार, खुद ही शिकार हू
कविता पूरी करने की अपनी आदत का।

कब से दो पंक्तियाँ छन्द की उमड रही हैं
हो पाती क्यो नहो किन्तु पद पूर्ति न जाने,
कर समस्या पूर्ति आप ही इन छन्दा की

महेन्दर कहिए, है पंक्तियाँ कौनसी ?

हमीर पहली तो है
सही विलग्गो नग्ग तै तन कण्ठ वलाप रे।

महे दरा भाजण कोई न मग्ग लागी लाय ज दवथयौ ॥
और दूसरी ?

हमीर थुड तो सूकोडाह ऊपर फूल वहूकडो

महेन्दरा आलो थाय अथाह बेल विडाणी गहकियौ ॥

हमीर *धन्य आप हैं धन्य आपके मात पिता हैं*
धन्य भाग है मेरे, मिला आपसा साला,
महन्दरा जी मेरे मन म जो काटा था
निकल गया है आज सदा के लिए,
आज से बन्धु भाव ही हम दोनो मे सदा रहेगा ।

महेन्दरा मेरे मन म तो पहने से
हेत आपके लिए घना है

हमीर राम कर यह बेल नेह की
दिन दूनी वढती ही जाए ।
मेरी यह उत्कट इच्छा है
चल आप इस वार साथ ही मेरे घर पर

रहे आपका सग-साथ तो मौज रहेगी
आप सरीखे गुणी मिनख की सगति पा कर
सभी ग्रामवासी खुश होंगे ।

**महेन्दरा** जो भी है अभिलाप आपकी
मेरे लिए वही आज्ञा है
चला चलूँगा मेरा क्या है,
मुझको तो खुद अच्छा लगता है देशाटन

**हमीर** तो फिर शुभ दिन है, कल ही प्रस्थान करेंगे

**महेन्दरा** जैसी मर्जी ।

[दृश्यान्तर, वन प्रान्तर की हलचल सूचक ध्वनियाँ वन्य जीवों आवाजें, दो अश्वारोहियों के घोडो पर बढ़ते जाने के स्वर]

**हमीर** महेन्दरा जी, निकल दूर तक आये हैं हम
अच्छा हुआ, मिल गयी आज्ञा बापू जी से
और आपका सगति लाभ मिल गया हमको
इस गति से हम पहुँच जाएँगे गाँव जल्द ही ।

**महेन्दरा** सो तो ठीक, किन्तु जाने क्या, मुझको तो है
यह जगल का दृश्य बहुत लग रहा सुहाना
जी करता है, आज यहीं रुक जाएँ दिन भर
और करें आखेट -

**हमीर** · आपने तो वह दी है
बात जो कि मेरे मन की है, चलो रुकें हम

यही वांध दें अपने घोड़े इन पेडो से
सुस्ता ल, आराम करें कुछ
(सम्बद्ध ध्वनियाँ, कुछ नर नारियो की पद चापें)

महेन्दरा लो वह देखो, चले आ रहे कौन इधर ही
लगता है कि किसी ने हमको देख लिया है ?

हमीर आने दो जो भी होगा, देखा जाएगा !
(पदचापों के निरन्तर निकट आने की ध्वनि)

पुरुष-स्वर राम-राम सा,

हमीर राम-राम सा,

महेन्दरा फरमाओ सा,

पुरुष-स्वर नांव-गांव क्या सरदारो का, और कहाँ से
आना हुआ आपका और कहाँ जाना है ?

हमीर : ये है सोढा महेन्दरा जी, अमरकोट के
राणा वीसळ दे के बेटे,
मैं हमीर जाडेचा........

महेन्दरा ..... मेरे वहनोई सा,
अमरकोट थे गये परणने, आ निकले है
हम दोनों ही सहज इधर आखेट खेलते !
किन्तु आप तो कहें, आप किसके माणस है
किसके भेजे आए हैं, क्या योग्य हमारे ?

पुरुष-स्वर हम सव सेवकजन हैं चाकर है मूमल के

हमीर : मूमल कौन ?

महेन्दरा कौन है मूमल ??

स्त्री-स्वर नही जानते !

सुना नही है क्या मूमल का नाम आपने ?
जग प्रसिद्ध मूमल, जिसका जस
फैल रहा है माढ देस मे, काक नदी यह
कल कल स्वर म है जिसके ही गीत गा रही
पछी-पछी नाम कि जिसका टेर रहा है।
वह मूमल की मेडो है, मूमल का वासा

पुरुष-स्वर अगर न देखी मेडो मूमल की, क्या देखा ?

हिंगळू रगी हुई दीवारें दिप-दिप करती
केसर कस्तूरी से लीपे जगमग-आंगन
काच जडे चन्दन कपाट हैं मणि-कचन के
इन्द्र-सभा किस गिनती में है
मूमल की मेडी के आगे ?

स्त्री-स्वर मूमल नही अप्सरा से कम

महेन्दरा ब्याही है वह या कि कुँआरी ?

स्त्री-स्वर वह अद्भुत सुन्दरी अभी तक अक्षत-कँवारी

मनवाञ्छित वर की तलाश मे वह तप करती
तिल तिल जलती दीपशिखा सी वाट जोहती,
लेकिन जो भी खरा कसौटी पर उतरेगा
इस मिरगानेणी पदमण को वही वरेगा।

पुरुष स्वर  मैं खवास चाकर मूमल का
हुकुम हुआ है हमे, आपकी हो मिजमानी
स्नान-ध्यान से हो, निवृत्त थकान मिटा कर
एक-एक कर चलें आप मूमल की मेडी
देखें छवि मूमल की, मूमल की मेडी की,
जाने किस पर रीझ जाय वह मरुधर-गोरी

महेन्दरा : ठीक बात है, बहनोई सा, आप पूज्य हैं
हैं हकदार आप ही, पहले आप पधारें

हमीर  महेन्दरा जी, कहा आपका सिर-माथे है।

(स्वल्प सगीत विराम; क्रमश भाषा, उल्लास आतक एव निराशा-जनक वाद्य स्वर)

महेन्दरा  बहनोई सा घिग्घी क्यो बध गयी आपकी
देख लिया क्या ऐसा मूमल की मैडी मे
प्रेत-ग्रस्त से आप इस तरह कांप रहे है ?

हमीर  (भय-विजडित हकलाते हुए)
महेन्दरा जी बात नही कहने-सुनने की
वह तो रूपमती रमणी का महल नही है
है दैवी विपदाओ की अनबूझ पिटारा
प्राणो के गाहक विषधर केहरी भयकर
आगन्तुक को पल मे डॅस जाने को तत्पर
कदम-कदम पर वहां खुदी हैं खन्दक खाई

चारों तरफ आग की ऊँची-ऊँची लपटें
जीभ लपलपाती खूनी प्यासी डाइन सी !
मेड़ी नहीं, मौत की वह औघट घाटी है
वहाँ भूल कर भी महेन्दरा जी, मत जाना

महेन्दरा : यह तो कोई बात नहीं है मर्दों वाली
मैं तो सदा चाहता, ऐसी मिले चुनौती
है महेन्दरा वहीं जहाँ संकट प्राणों पर !
यूँ तो न भी जाता, अब अवश्य जाऊँगा !!

[घोड़ा दौड़ाते हुए प्रस्थान; भारी लौह-द्वार खुलने की आवाजें; प्रहरी के पद-चाप]

पुरुष-स्वर : चलें, आप भी अपने पौरुष का परिचय दें
सिर पर रख कर पाँव और निज प्राण बचा कर
वे साथी सरदार आपके अभी गये हैं !

महेन्दरा : चले गये होंगे, इससे क्या, चली आ रही
रीत सदा ही, जैसी करनी, पार उतरनी !

पुरुष-स्वर : ठीक बात है, भाग्य आप भी आजमाइए
प्रथम द्वार यह ... ..., इसमें आप प्रवेश कीजिए

(भयंकर सिंह-गर्जन)

महेन्दरा : सुने सिंह-गर्जन ऐसे जाने कितने हैं
कितनों का आखेट किया है, ले, तू भी ले
वार झेल वनराज आज मेरे कुन्तल का !

(भाले का भूसे से बने कृत्रिम सिंह में धंस जाना; मरते हुए शेर जैसी चिंघाड़, महेन्दरा द्वारा उपहास)

ओह.. ....
निकल गया भूसा केहरि का इतनी जल्दी ?
वे बनावटी चिंघाड़े भी खोल गयी हैं !
(अजगर की तीव्र फूत्कार-ध्वनि)
अच्छा, चले आ रहे हैं विकराल भुजगम !
नागराज, लो, मेरी असि का पानी चाखो !!

(तलवार के टकरा कर टूटने की आवाज)

तलपेटा तो नागराज का फौलादी है
कारीगरी बनावट की भी बड़ी अजब है
की है नकल गजब बोली की कलावन्त ने !
पर पौरुष की ये कसौटियाँ बचकानी है
यही खेद है, यह कैसी है शौर्य परीक्षा
छेड़खानियों की यह कैसी नादानी है !

पुरुष स्वर . जरा सँभल कर चलें, देखिए, लहराता है
कैसा गहरा नीला पानी, उतरें इस में
सोच-समझ कर. ....

महेन्दरा : जाने ऐसे कितने अगिन
ऐसे नीले पनियाले पत्थर फर्शों के
जो गहरे पानी का विभ्रम उपजाते थे

पार कर चुका हू मैं जावन मे बचपन से
मेरा पथ-दर्शक है यह अनियाला भाला
जो चुप रह कर या टकरा कर, कह देता है
कहाँ फर्श है और कहाँ कितना पानी है

(सम्बद्ध ध्वनियाँ)

लो, अब आँगन खत्म हुआ, लहराया पानी
पानी जो पत्थर के आँगन सा लगता है ।
ले चल मुझे निकाल सुरक्षित, मेरे कुन्तल ।

पुरुष-स्वर : इधर न आगे बढ़ें, देखिए, बढ़ी आ रही
धू-धू करती हुई आग की भीषण लपटें

महेन्वरा . (भाले की टकराहट)
मेरा यह प्यारा भाला मुझसे कहता है
दूर, यहाँ से दूर, आग की ये लपटें है
उभरे तल की स्फटिक शिलाओ के कारण जो
लगता है कि, निकट हममे, हमको घेरे हैं

पुरुष-स्वर . यहाँ एक से बढ कर एक न जाने कितने
आये वीर पुरुष, मुँह की खा, लौट गये हैं
एक आप ही परम भाग्यशाली नर-वर हैं
जो कि पार कर बाधाओं को सफल हुए हैं ।

स्त्री-स्वर : मेरा मनचीता मनचाहा पुरुष आज मैंने पाया है
(मूमल) धूम मचे आँगन मे आज बजे शहनाई

कौन अरे यह पिकबयनी यह वीण-विनन्दिनि
कानो मे शब्दों का अमृत घोल रही है ?

पुरुष-स्वर : ये ही तो मूमल है, मारु देश की कोकिल
इस मेडी की अखनकँवारी राजदुलारी !

महेन्दरा : धन्य हुआ हू मैं मूमल के छवि-दर्शन से !
[इप्यान्तर, शहनाई के मधुर स्वर उभरते हैं]

महेन्दरा जिस अनिन्द्य सौन्दर्यमूर्ति की
कीर्ति सदा सुनता आया था
आज उसी को सम्मुख पा कर, पुण्य फले है,
धन्य हुआ हू !

मूमल . साध जन्म-जन्मो की मेरी
सफल हुई है आज, युगो की अथक प्रतीक्षा
हुई आज मुझको वरदायी
मैने अपना स्वप्न-पुरुष प्रत्यक्ष पा लिया ! !

महेन्दरा मूर्तिमती रमणी की मेरी मधुर कल्पना
मूमल, आज तुम्ही को पा साकार हुई है
जितनी भी छवियाँ जीवन में अब तक आयी
लगता है वे खण्ड-खण्ड थे बिम्ब,
या कि बिखरी किरणें थी
उसी रूप की भुवन-मोहिनी चन्द्र-छटा की
जिसकी एक तुम्ही भू तल पर पूर्ण कला हो !

मूमल : सारे सुख-वैभव पा कर भी मैं रीती थी
आज तुम्ही को पा कर, पहली बार लगा यो,
है पा लिया सभी कुछ मैने इस जीवन मे !

महेन्दरा : जो भी चाहा मैंने सदा वही पाया है
पर जीवन भर रहा भटकता इस आशा मे
कोई तो हो ऐसा, अपना मुझे बना ले,
जिसमे अपने को खोना ही पा लेना हो
आज तुम्हे पा,, मैं अपने को खो बैठा हू !!
तुम ही मेरी प्राण सहचारी हो जन्मो की
हृदय-देश की रानी हो........

मूमल : ........मैं तो दासी हू !
ज्ञात मुझे है, आप विवाहित है, शोभित हैं
परिणीताएँ कई आपके अन्त-पुर मे
पर इससे क्या, रहें सभी वे भाग्यशालिनी
मुझे नही होना है रानी, नही किसी का
भाग्य बँटाना मुझे, चाह मेरी इतनी सी
रहू आपकी ही सहभागिनि जन्म-जन्म मे
चाहे देह-रूप में या प्रेरणा-रूप में
रहू सग मे सदा रमण मे या कि मरण मे
मेरे रोम-रोम में रमे हुए चेतन-स्वर
प्राण आप ही हैं मेरे काया-पिंजर के

महेन्दर। हे पिकवयनो, हे कुरज, हरियल, मरु कोकिल,
प्राण-खगी हो तुम ही मेरे मन-उपवन की
सोने के पिजरे मे मोती तुम्ह चुगाऊँ
रक्खूँ तुमको ग्रमरकोट के रगमहल मे—
उमड रह है सघन भाव-घन हृदय-गगन मे
मचल रही है सात सुरो का प्यासो रिमझिम
लाग्रो इधर मुझे वीणा दो, मैं वाणी दूँ
ग्रपने सपनो को मादक गीतो मे ढालूँ—

गीत (राग मांड)

काळी-काळी काजळिए री रेख
कोई भूरा ए वादळ मे चमके वीजळी
शोढ री ए मूमल, हाले नी ले चालूं मुरधर देम
नखराळी ए मूमल
हाले नो ले चालूँ मुरधर देस
जगमीठी ए मूमल होले तो ले चालूं मुरधर देस
सीस तो मूमल रो ढोल। वागडियो नारेळ जी
कोई चोटी तो मूमल री वासक नाग ज्यूँ
रायां री ए मूमल, हाले नी ले चालूं ग्रमराणे रे देस
नाक तो मूमल थारो सूग्रा केरी चोच ज्यूँ
कोई आख्यां तो मूमल री छै रतनाळियाँ
राया री ए मूमल हाले तो ले चालूँ ....
वाँह तो मूमल री ढोला चम्पा केरी डाळिया

कोई केसरझरणी मूमलरी कळाइयाँ

राया री ए मूमल....
पेट तो मूमल रो ढोला पीपळ केरो पान
कोई हिवडो तो मूमल रो साचे ढाळियो
जगमीठो ए मूमल, हालै ले तो चालूँ ढोलै रे देस

मूमल : नही चाह है ग्रमरकोट के रगमहल की
नही राजसी सुख वैभव की चाह मुझे है
इस जग की मैली ग्राँखो से दूर
यहाँ एकान्त-विजन मे
एक-प्राण-मन-ग्रात्मा-धारी दो देहो का
एकीभूत पुनीत दिव्य यह मिलन ग्रमर हो !
रख लूँ मैं तुमको साँसो मे गन्ध बना कर
ग्रौर ग्राँज लूँ काजल-सा ग्रपनी ग्राँखो मे
मैं न तुम्हे पल भर भी ग्रोझल होने दूँगी

वाह देखती रही युगो से, तब ग्राए हो
ग्ररे बटोही, ग्रा कर ग्रब यह जाना कैसा ?
ग्रब तो सदा रहो इन पलको की छाया में
छक-छक मद के प्याले पीग्रो मधु-ग्रधरों से
बाहुलताग्रो के झूले मे सुख से झूलो !

शर्तिया, पानी यह तो काक नदी का
जाता है यह कुँअर नित्य मूमल की मेडी !

महेन्दरा : रामू, मेरे बाळपणे के सगी रामू,
तू ही बतला, अब मैं कैसे जा पाऊँगा
रह पाऊँगा कैसे, मिले बिना मूमल से ?
छोड एक चीखल को, ऐसा ऊँट कहाँ है
रात-रात में पहुँचा दे मूमल की मेडी
पौ फटने से पहले तक वापिस ले आए !
मुझे नहो पा कर मूमल पर क्या गुजरेगी ?
तू ही कोई जुगत बिठा अब तो रामूडा !!

रामू चीखल तो लाखो मे ही था एक,
अजी, उसके क्या कहने !
ऊँचे-पूरे डीलडौल का, सुघड नळी का
ईड आरसी थी जिसकी, था सूधा-सावळ
रेशम सी थी जिसकी कोमल नरम रु वाळी
भवरी पूँछ और किरकिरिये कानो का वह ऊँट
चाल मे वात हवाओ से करता था
ना-ना करते जाता था नागौर पलक मे
भँ-भँ करते जैसलमेर पहुँच जाता था
मोहरी ढीली अगर छोड दी थोडी सी भी

तुर्त-फुर्त दिल्ली की खबरें ले आता था
मोहरें तोलो, तो भी वैसा ऊंट कहाँ है ?
अब तो उसकी याद रह गयी !
किन्तु कुंअर जी
राती एक टोरड़ी है जो है मतलब की
काम काढ देगी, पर पूरी सधी नही है,
छड़ी दिखा मत देना, वर्ना बिचक जाएगी
तेज बहुत है, पहुँचा तो देगी जल्दी ही
लेकिन डर है, कही मार्ग से भटक न जाए
रस्ता उसने कभी नहीं देखा-भाला है

महेन्दरा : कोई बात नही, ले आओ, रस्ता मेरा तो देखा है
दोपहरी ढ़लने को आयी मुझे रवाना हो जाना है !

रामू : अभी उसे हाजिर करता हूं !

(पद-चापें; संगीत-स्वर; ऊंट की चाल और बोल के स्वर)

हाजिर है खिदमत में, इस पर करें सवारी

महेन्दरा : (ऊंट पर सवार होते हुए)
रामू, मैं तेरा अहसान नही भूलूंगा
अच्छा मुझे विदा दे ......

रामू : ........मार्ग आपका शुभ हो !

[देर तक ऊंट को दौड़ाने, उसके गरळाने, टिचकारे जाने, छड़ी मारे जाने की तीव्र मद आवाजें आती रहती हैं]

महेन्दरा साँझ अरे ढलने को आयी !
अभी लोद्रवे का निशान तक नही दीखता
शायद मैं पथ भूल गया हू !
ओ भाई चरवाहे है यह स्थान कौन सा ?

पुरुष-स्वर (यह तो बाहड़मेर, आपको कहाँ पहुंचना ?)
अरे भटक कर मैं तो दूर निकल आया हू
अब तो धुर उतराधे राह पकड़नी होगी !

[ऊंट को तेज दौड़ाये जाने और हाँफने की आवाजें देर तक जारी रहती हैं]

लगता है, जब चला, शकुन कुछ ठीक नही था
रात हो गयी, हिरणी भी नभ में उग आयी,
किन्तु लोद्रवा स्वप्न अभी भी बना हुआ है
और सामने शहर मुझे जो दीख रहा है
है यह पूगल, हाय रामजी, होनी है अब
क्या अनहोनी, मुझमे यह क्या बीत रही है ?
काले कोस कई आडे है, कहाँ लुद्रवा ?
पर मैं भी हू हिम्मत नही हारने वाला

अरी कृतघ्ने .. क्या इस दिन के लिए
लुटाना प्यार तुझे था ?
मीठी मीठी प्यार-पगी वे बातें, मोहक हाव भाव वे
सब नकली थे, सब झूठे थे ?
इसीलिए तो कहा गया है,
सागर का विस्तार नापना संभव है,
पर त्रिया-चरित्र का पार नहीं है !
जी करता है .. ... मैं इन दोनो ही देहों के
अभी खड्ग से पल मे टुकड़े-टुकड़े कर दूँ
पर इससे क्या मुझे मिलेगा ?
कौन अरे वह मेरा निश्छल प्यार मुझे लौटा पाएगा ?
अपने सिर पर हत्याओं का पातक लेकर
लेकर मरा हुआ मन, मैं क्या कर पाऊँगा ?
कब तक भूख बुझाऊँगा जूठे टुकड़ो से
टूटे हुए खिलौनो से कब तक खेलूँगा ??
जो मूमल मेरी अपनी थी
वह तो है मर गयी कभी की
और देह मे उसके जो मूमल जन्मी है
उसके लिए कभी का है मर गया महेन्दरा
बीते गयी जो भी, अब तो वह बात गयी है
रात अभी तक है धुँधला सा पर्दा डाले

इससे पूर्व कि, किरन सुबह की
सारे भेद उजागर कर दे, लौट चलूँ मैं ......

[स्तब्धता एवं क्षोभ उत्पादक वाद्य–स्वरों का उभरना और क्रमश करुण स्वरों में पर्यवसान]

दासी : राजकुमारी मूमल, कब तक खिन्न रहेंगी ?
सूख चली उजली-गोरी केसर सी काया
कब तक यों खाना–पीना–सोना बिसरा कर
प्राण रहेंगे और देह का धर्म निभेगा ?

मूमल : मैं क्या करूँ, नही कुछ भी मुझको रुचता है
छवि महेन्दरा की आँखों में छायी रहती
उस दिन पिछली रात यहाँ वह आया तो था
देखे थे मैंने उसके पदचिह्न झरोखे के नीचे
माटी पर उभरे,
मैं सोयी ही रही अभागी, रूठ गया वह !
करने को प्रायश्चित अपनी उसी भूल का
जाग रही हूँ कब से उसकी अगवानी में
सोयी पीड़ा को गीतों में जगा रही हूँ
जब तक पीर जागती है तब तक जीवन है
ला, सितार के तारों में दुख को सहलाऊँ !

[विराम; दासी के लाने-लाने, सितार थमाने और तारों को छेड़े जाने के स्वर]

गीत

म्हारा मन रा मेवासी रे मिनगी रा कूंआ म्हेंदरा
म्हारा अमल हेताळू घरे आव
म्हारा मन रा बुलाया रे बचनां रा सांचा म्हेंदरा
म्हारा अगम हेताळू घरे आव
सांवळी सूरत थारी आंख्यां आगं ग्यू ना हटै
म्हारा रगबीना मोड़ा घरे आव
हाड हुया सब पिंजरो रे नसा हुई सब तांत
म्हारा तन रा साजिंदा घरे आव
सोमण सूं मोटी मूर्व भरे भवरां सूं प्रेम
म्हारा मोडा रसिया घरे आव

दासी  राजकुंवरि मूमल याई गा,
भेजा था जो दूत आपने अमरकोट को
वह महेन्दरा का सदेशा ले आया है

मूमल : हाजिर करो अभी योठी को

दूत  घणी खमा, हो घणी घणी खम्मा कुंवरी जी
महेन्दरा जी ने सदेश यह कहलाया है
'गोडा नही वासना का, प्रेमी चरित्र का
देख लिया उस रात स्वयं मैंने आंखों से
मूमल का असली चरित्र, उससे वह देना,

मुझे भुला दे, जिसके साथ जुडा उसका मन,
उस से ही प्राणो की प्रीत लगाए रक्खे !"

मूमल : देख डावडी, कहती थी मैं,
चूक प्रतीक्षा मे होने से, सो जाने से,
नही रूठ सकता है मुझसे मेरा रसिया
उसके दिल मे कोई गहरा शूल चुभा है
पर महेन्दरा, मैं तुमको कैसे समझाऊँ,
खेल-खेल मे ही उस दिन नटखट सूमल ने
जो है मेरी बहन, सहेली बालपने की
भर मरदाना भेष, अनेकों साँग किये थे
हारी-थकी हुई दिन भर की
भेष बदलना भूल गयी वह
हम दोनो को नीद आ गयी !
अच्छा होता, अगर नीद की जगह
मौत उस दिन आ जाती !!
कैसे दूर करू अब सशय मैं अपने प्रेमी के मन का ?
अब तो उससे मिलने पर ही बातें होगी
सशय का दशन, दर्शन से ही उतरेगा
अमरकोट चलने की तुरत करो तैयारी !

[स्थानान्तर, ऊटों रथों-बहलियों के गति-स्वर, स्वल्प सगीत-विराम]

दूत : अमरकोट के बाहर, आमों के बागों में
मूमल ने डेरे डाले हैं, कहलाया है
कृपा मिलन की करें, प्रतीक्षा है दर्शन की !

महेन्दरा : मिलने से पहले, अच्छा हो,
हो जाए उसके चरित्र की खरी परीक्षा
जाओ, उससे जा कर यह दो झूठ-मूठ ही
सर्प-दंश से है मेरा प्राणान्त हो चुका
छिपा रहूँगा मैं बाहर अपनी बहली में
देखूँगा क्या प्रतिक्रिया उसकी होती है
प्यार खरा होगा तो मिलना हो जाएगा
वरना तो रथ अपना मैं लौटा लाऊँगा
हम दोनों में दुर्निवार विच्छेद चिरन्तन
अन्तिम परिच्छेद होगा इस प्रणय-कथा का !

[स्वल्प संगीत-विराम; मूमल के डेरों में हलचल की सूचक ध्वनियाँ]

मूमल : बोलो, मेरे प्रेमी ने क्या कहलाया है,
समय प्रदान किया है कब मुझ से मिलने को
शीघ्र कहो संदेश, व्यर्थ क्यों देर लगाते,
रोम-रोम प्रतिपल व्याकुल मेरा मिलने को
अरे बोल क्यों नहीं फूटते हैं श्री-मुख से ?

दूत : है महेन्दरा जी को तो डँस लिया नाग ने
वे परलोक सिधार गये हैं !

मूमल : ओह, भयकर वज्रपात... ...

[मूर्च्छित हो मूमल का पछाड़ खा कर गिरना, भाग-दौड़, हलचल, कई आवाजें : अरे पानी के छींटे दो, वैद जी को बुलाने आदमी दौड़ाओ, अब क्या धरा है ? नाड़ी बन्द है,]

एक पुरुष-स्वर : अरे उड़ चुके हैं मूमल के प्राण-पखेरू !

[मृत्यु-शोक-जनित करुण विलाप के स्वर]

महेन्दरा : हा मूमल, प्राणों से प्यारी मेरी मूमल
लेने चला परीक्षा तेरी, पर दे बैठा
मैं प्रमाण अपने दुर्बल विकृत पौरुष का
ईर्ष्याग्रस्त सकुचित अपने संशय-मन का

हाः हाः हाः हाः ओ निर्मोही अहंकार, तू
और परीक्षा ले सतीत्व की और प्यार की !
घाट-घाट का चञ्चल पानी पीने वाले,
तूने सदा चाँदनी को नपकों में ढाला
तुझे प्रीत के अंगारे चुगना कब आया !

मूमल, मेरी प्यारी मूमल, एक बार तू
हँस कर कह दे, महेन्दरा, मेरे महेन्दरा
तो इस बार ले चलूँ तुझको
उस अनदेखे अमरकोट में
जहाँ न प्राणों में संशय हो
जहाँ न भय हो प्यार-प्रीति को

मरवण....

(गीत के करुण मधुर स्वर उभरते हैं)

गीत

काळी-काळी काजळिए री रेख  
कोई मूरा ए बादळ में चमके बीजळी  
रायां री ए मूमल, हालै नीं ले चालूं मुरधर देस  
लोद्रे री ए मूमल, हालै नीं ले चालूं अमराणे रे देस  
जगमीठी ए मूमल......



